वर्ष ३४

धर्म

अंक ३

मार्च १९५३



हरिहर स्वरूपमें श्रीका कमलदर्शन

ब्लॉक- दैनिक प्रताप, सुरतके सौजन्यसे]

[फोटो- चंद्र आर्ट स्टुडिओ, सुरत

फाल्गुन २००९

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

वैदिकधर्म

सहसंपादक
महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु वी पी से ५॥) रु. विदेशके ६॥) रु.

विषयानुक्रमणिका

परीक्षा विभाग

आ व श्य क सू च ना यें

१- ३१ जनवरी तथा १ फरवरी १९५३ ई. की होनेवाली संस्कृतभाषा प्रचार समितिकी परीक्षाओंका परीक्षा फल ता० २४ मार्च १९५३ ई. को प्रकाशित होगा।

२- उक्त तिथिसे पूर्व परीक्षा फल विषयक कोई पत्रव्यवहार न किया जाय।

३- परीक्षा फल समाचार पत्रोंमें भी प्रकाशित किया जाएगा।

४- प्रत्येक केन्द्रमें उस केन्द्रका सम्पूर्ण परीक्षाफल श्री केन्द्रव्यवस्थापक महोदयके पास भेजा जाएगा।

५- केन्द्रव्यवस्थापक महानुभावोंसे निवेदन है कि वे अपने केन्द्रका परीक्षाफल ता० २४ मार्चको प्रातः ८ बजे प्रकाशित करें।

शीतलाहर धूप

शीतला (चेचक) की बीमारी भारतमें बहुत अधिक फैली हुई है। इस भयकर बीमारीके शिकार प्रतिवर्ष सैकडों हो जाते हैं। जहाँ यह फैलती है वहाँ विनाशकी भयङ्कर आंधीकी तरह सैकडों बच्चोंके प्राण खतरेमें आजाते हैं। हजारोंकी संख्यामें भारतके बालक इसके कारण मौतके मुंहमें चले जाते हैं।

रक्षाका एकमात्र उपाय

इससे रक्षाका एकमात्र उपाय हमारी शीतलाहर धूप है। प्रातः सायं अंगारोंपर यह धूप डालकर अपने घरमें धुआं कीजिये। ऐसा करनेपर शीतलाका भयानकसे भयानक आक्रमण भी शान्त हो जाता है और दाने सूख जाते हैं। मृत्युके मुंहमें गया हुआ रोगी भी बच जाता है।

ऐसी अमूल्य वस्तु सर्वदा अपने पास रखें। एक पॅकेटका मूल्य चार आने। मिलनेका पता-

श्री रामचन्द्रजी आर्य मुसाफिर
डी० ए० वी० हाईस्कूल, अजमेर

वेदमंदिरका निर्माण

पारडी जि० सूरतमें हमने पारडी-बलसाड मार्गपर एक १८ एकर का स्थान अमेरिकन मिशनसे स्वाध्याय-मंडलका प्रचार कार्य करनेके लिये खरीदा है। जहाँ ये मिशनरी ४० वर्षतक ईसाई धर्मका खूब प्रचार करते थे, और जिनके कारण सहस्रों हिन्दु ईसाई हो चुके थे, वही स्थान हमने लिया है और वहीं अपने सनातन वैदिक धर्मका ध्वज लगा दिया है। जहां वेद-उपनिषद-गीता-रामायण-महाभारत आदि की निंदा होती थी, वहां ही आज ये ग्रंथ हिंदी-गुजराती-मराठी-अंग्रेजीमें प्रकाशित हो रहे हैं और इन ग्रंथोंमें कहे शुद्ध सनातन आर्य धर्मके व्याख्यान भी वहीं हो रहे हैं। और हिंदीमें 'वैदिक धर्म' गुजरातीमें 'वेदसंदेश,' मराठीमें 'पुरुषार्थ' ये मासिक अपने धर्मके प्रचारके लिये यहांसे प्रकाशित होते हैं।

इस भूमिमें ईसाईयोंका गिरजा घर (चर्च) था। जिस समय यह भूमि हमने खरीद की, उस समय हमने उनसे कहा कि, इस चर्च (गिरजाघर) की चार दिवारी परसे तुम अपने चिन्ह भले ही ले जाओ, पर यह चार दिवारी जैसी है वैसी ही रखो। हम इसका उपयोग "प्रार्थना मंदिर" के रूपमें ही करेंगे, इसका दूसरा कोई उपयोग नहीं करेंगे। हमारे इतना कहनेपर और विश्वास दिलानेपर भी उन्होंने कहा कि 'ईसाईयोंका मंदिर हिंदुओंके अधीन नहीं जा सकता' ऐसा कहकर उन सुशिक्षित अमेरिकन मिशनरियोंने अपने ही हाथोंसे अपना गिरजाघर (चर्च) तोड दिया और उसकी ईंटें, चूना, पत्थर, लकडी, छप्पर आदि जो भी था, वह सब बुनियादसे उखाड कर दूसरी जगह ले गये !!! सुशिक्षित अमेरिकन मिशनरियोंकी संमतिसे ईंटोंकी चार दिवारीके ही प्रभुके प्रार्थना मंदिर होते होंगे! अस्तु।

हिंदुओंने आजतक किसी धर्मके मंदिर गिराये नहीं हैं। इसलिये हम इसी स्थान पर, इसी बुनियाद पर अपना 'वेद मंदिर' बनाना चाहते हैं। वेद मंदिर उसी बुनियाद पर बनाना है और वह बुनियाद ५१×१८ फूटकी है। इस बुनियाद पर १२ फूट ऊंचा यह वेद मंदिर बनेगा।

१ इस 'वेदमंदिर' में अपने वैदिक धर्मके सब ग्रंथ रखे जांयगे, जो वेद, उपनिषद, गीता, रामायण, महाभारत, स्मृति आदि सभी ग्रंथ भाषानुवाद सहित यह रहेंगे, जो लोग यहां पढनेके लिये आयेंगे, वे इन ग्रंथोंको पढेंगे। यहां लोग आकर विना मूल्य धार्मिक ग्रंथ पढेंगे। यहां विनामूल्य वाचनालय रहेगा।

२ यहां इस 'वेद मंदिर' में साप्ताहिक सत्संग होगा, जिसमें वेद-उपनिषद और गीताकी कथा होगी, धर्मके प्रचारार्थ व्याख्यान होंगे। पवित्र दिनोंमें उत्सव होंगे।

३ संध्या, हवन, वेदपाठ आदिकी शिक्षा जो सीखनेके लिये आवेंगे उनको विना मूल्य दी जायगी।

४ इस 'वेद मंदिर' में हरएक बाल, तरुण, वृद्ध स्त्रीपुरुषको आरोग्य रक्षणके लिये अत्यावश्यक जितना योग-साधन, सूर्य नमस्कार आदि योगके व्यायाम हैं, उतना सब सिखाया जायगा। इसका कोर्स ३ दिनसे १५ दिनतक रहेगा।

५ यहां शुद्धिका कार्य होता रहेगा।

इस उद्देश्यसे यह "वेद मंदिर" बनवाना है। इसके लिये आवश्यक सरकारी आज्ञा मिली है और अच्छे इंजिनियरसे पक्का "वेद मंदिर" बनानेका अंदाजा व्यय १००००) दस हजार रु. का हुआ है। इसमें बीचमें वेद मंदिर होगा। तीन कमरे और चारों ओर अच्छा पुष्पोंका सुन्दर उद्यान बनेगा।

आप इस 'वेद मंदिर' का महत्त्व जानकर इसकी उचित सहायता कीजिये। इसकी सिद्धताके लिये जो सहायता दे सकते हैं वह सहायता शीघ्र भेजनेकी कृपा करें, क्यों कि जितनी शीघ्रता हो सकेगी उतनी करके इस 'वेद मंदिर' को अतिशीघ्र खडा करके उक्त कार्य अति शीघ्र शुरू करना है।

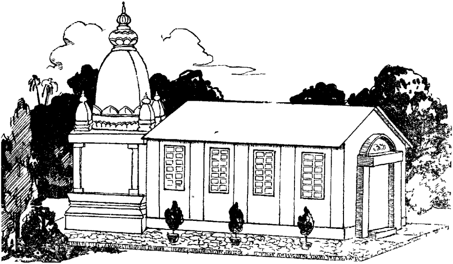
सहायता देनेवालोंके नाम प्रकाशित किये जांयगे,

भवदीय.

श्री० दा० सातवलेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय मंडल आनंदाश्रम किल्ला-पारडी. जि० सूरत.

वेदमंदिरके लिये सहायता भेजनेवाले सज्जनोंके नाम



१ अखिल भारतीय आर्य (हिंदु) धर्म सेवा संघ देहली	रु	२०००
२ एक अमदावादी सज्जन	,,	३००
३ श्री प शिवकुमारजी महेशदत्त शुक्ल बलसाड [इंटें ६०००]	,,	११५
४ स्व. पं चंद्रकान्तजी वेदवाचस्पति के पुनीत स्मरणार्थ उनके पिता पं. नर्मदाशंकर त्रिवेदी जिज्ञासु द्वारा	,,	१२५
५ श्री हरि पंढरीनाथ बहिरट पढरपुर	,,	१०१
६ श्रीमती जीवीबेन उमेददास पटेल अमदावाद	,,	१००
७ श्री ट्रस्टी श्रीमगनीराम रामकूवर बंगुर चेरिटेबल ट्रस्ट, कलकता २	,,	५०
८ श्री दिवाकर श्रीधर शार्ङ्गपाणी, बडोदा	,,	५०
९ श्री. श्री रा टिकेकर, मुंबई ४	,,	५०
१० रा. ब चन्द्र विद्यानंद, सूरत	,,	२५
११ श्री. वि. वि. जोशी, वकील गंगावेश, कोल्हापूर	,,	२५
१२ श्री शंकर वामन जोशी, पुणे-२	,,	१७
१३ श्री वीरेन्द्र प्रसाद महादेविया मुंबई	,,	११
१४ श्री. य. ना. पित्रे, जोगेश्वरी-मुंबई	,,	१०
१५ श्री गणपतभाई नाथुभाई चांपानेरीआ मढी, T V. Rly	,,	१०
१६ रघुनाथ बापुजी फडके पूर्णे २	,,	१०
१७ पुसदके एक सद्गृहस्थ	,,	१०
१८ पारडीके एक सद्गृहस्थ	,,	१०
१९ श्री शंकर बाळकृष्ण भिडे. पुणे-२	,,	५
२० श्री विष्णु रामकृष्ण करकरे, नासिकरोड	,,	५
२१ श्री गो. गो. इनामदार पुणे- २	,,	२
२२ श्री सी. ता. कंदरगांवकर पुणे-२	,,	१
२३ गुप्तदान	,,	१

ता. २६।२।५३ तक जमा कुल रु. ३०४३

श्री. दा. सातवळेकर
अध्यक्ष-स्वाध्याय मंडळ, आनंदाश्रम, पारडी (जि. सूरत)

*

ऋषि दर्शन

ऋग्वेदमें अनेक ऋषियोंके दर्शन हैं। प्रत्येक पुस्तकमें एक एक ऋषिका तत्त्वज्ञान, संहिता-मंत्र, अन्वय, अर्थ और टिप्पणी है। निम्नलिखित ग्रंथ तैयार हुए हैं। आगे छपाई चल रही है—

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	मूल्य	१)	रु.	२ मेधातिथि	ऋषिका	दर्शन	मूल्य	१)	रु.
३ शुनःशेप	,,	,,	,,	१)	,,	४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	,,	१)	,,
५ कण्व	,,	,,	,,	१)	,,	६ सव्य	,,	,,	,,	१)	,,
७ नोधा	,,	,,	,,	१)	,,	८ पराशर	,,	,,	,,	१)	,,
९ गौतम	,,	,,	,,	१)	,,	१० कुत्स	,,	,,	,,	१)	,,
११ त्रित	,,	,,	,,	१)	,,	१२ संवनन	,,	,,	,,	०॥)	,,
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	,,	०॥)	,,	१४ नारायण	,,	,,	,,	१)	,,
१५ बृहस्पति	,,	,,	,,	१)	,,	१६ वागाम्भृणी	,,	,,	,,	१)	,,
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	,,	१॥)	,,	१८ सप्त	,,	,,	,,	०॥)	,,

१९ वसिष्ठ ऋषिका दर्शन मूल्य ७) रु. [प्रत्येकका डा. व्य. अलग रहेगा।]

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

अध्याय १ श्रेष्ठतम कर्मका आदेश १॥) रु. अध्याय ३२ एक ईश्वरकी उपासना अर्थात् पुरुषमेध १॥) रु
,, ३६ सच्ची शांतिका सच्चा उपाय १॥) रु. अध्याय ४० आत्मज्ञान-ईशोपनिषद् १) ,,

डाक व्यय अलग रहेगा।

(३) संपूर्ण अथर्ववेदका सुबोध भाष्य मूल्य २६) रु. डा. व्य. ४) रु.

वेदके व्याख्यान

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद। ६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक दिव्यजीवन और राष्ट्रीय उन्नति। ८ सप्त व्याहृति।

ये व्याख्यान तैयार हैं। दूसरे तैयार हो रहे हैं। [प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) छः आने और डा० व्य० =) दो आने]

उपनिषदोंके ग्रन्थ

१ ईश उपनिषद् मूल्य १) रु. डा. व्य. ॥)	२ केन उपनिषद् मूल्य १॥) रु. डा. व्य. ॥)
३ कठ उपनिषद् ,, १॥) रु. डा. व्य. ॥)	४ प्रश्न उपनिषद् ,, १॥) ,, ,, ,, ॥)
५ मुण्डक उपनिषद् ,, १॥) रु. डा. व्य. ॥)	६ माण्डूक्य उपनिषद् ,, ॥) ,, ,, ,, =)

मंत्री- स्वाध्यायमण्डल, आनन्दाश्रम, किल्ला-पारडी (सूरत)

संस्कृत भाषा हाईस्कूलमें आवश्यक होनी चाहिये

श्रीयुत डायरेक्टर ऑफ एज्युकेशन पूनाका एक (नं. ५६४।८४ (८) V. C. ता. २७ अक्टूबर १९५२ ई.) हाईस्कूल-शिक्षा विषयक अभी थोडे दिनों पूर्व देखनेमें आया।

इसमें आवश्यक विषयोंके अन्तर्गत (पृष्ठ २ पर)

[I] Regional Language (प्रान्तीय भाषा)

[II] Hindi (हिन्दी भाषा)

[III] English (अंग्रेजी भाषा)

इन भाषाओंका उल्लेख किया हुआ है; तथा ऐच्छिक विषयोंमें उसी पृष्ठ पर—

' A Classical Language, or

A Modern European Language '

इस प्रकारका उल्लेख है। अर्थात् ' प्राचीन श्रेष्ठ भाषा ' यानी ' संस्कृत भाषा ' इसे ऐच्छिक माना गया है। इसका स्पष्टीकरण पृष्ठ १० पर इस प्रकार किया गया है—

[I] A Classical Language Such as Sanskrit, Latin, Pali etc. or a Modern Foreign Language like Portuguese French, Japanese etc.

बंबई इलाकेमें मराठी, गुजराती और कानडी प्रान्तीय भाषाओंके रूपमें व्यवहृत होती हैं। इन तीनों भाषाओंमें सैकडा ५० से ६० तक संस्कृतके शब्द आजभी प्रयुक्त होते हैं। अतः यदि यह इच्छा हो कि एक शिक्षित नागरिकको ये तीन भाषायें भलीप्रकार आवें तो उसके लिये संस्कृत भाषा अनिवार्य विषयके रूपमें सिखाई जानी अत्यन्त आवश्यक है। यदि संस्कृतको न रखा गया तो विद्यार्थी पाली, अर्धमागधी आदि भाषा लेंगे और इस कारण छात्रोंको मराठी, गुजराती और कानडी भाषा शुद्धरूपेण आ ही न सकेगी।

हिन्दी भाषा आवश्यक है, अतः उसे सीखना है। इस हिन्दी भाषामें भी ५० से ६० प्रतिशत तक शब्द संस्कृतके हैं। अतः उत्तम हिन्दी आनेके लिये भी संस्कृत सीखना बडा आवश्यक है।

हमारे बंबई प्रान्तमें हिन्दी राष्ट्रभाषा होनेके कारण एवं मराठी, गुजराती तथा कानडीमें से एक प्रान्तीय भाषा इस प्रकार दो भाषायें आवश्यकरूपमें सिखाई जावेंगी। किन्तु भाषाओंका परिपोष जिस भाषा द्वारा होना सम्भव है तथा जिसके बिना परिपोष होना संभव नहीं है वह 'संस्कृत' भाषा विद्यार्थी यदि चाहे तो सीखें और यदि न चाहे तो न सीखें ! इस प्रकारकी परिस्थिति निर्माण की गई है।

हिन्दी, मराठी, गुजराती तथा कानडी भाषाओंमें यदि अच्छे लेखक तैयार करने हों तो उनके लिये संस्कृत जानना अत्यन्त आवश्यक है। अब हमें इन भाषाओंमें नये शास्त्रोंके ग्रन्थ तैयार करने हैं और उसके लिये नये शब्द अपेक्षित हैं। ऐसे शब्द संस्कृत भाषाकी सहायतासेही बन सकेंगे। संस्कृत न जाननेवाले विद्वान् ऐसे शब्दोंका निर्माण करही न सकेंगे। इस कारण संस्कृतको आवश्यक भाषाके रूपमें स्वीकार न करनेपर कोई भी संस्कृत न लेगा तथा विश्व विद्यालयोंसे निकलनेवाले स्नातक राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय भाषाके बहुत निम्नस्तरकी योग्यतावाले रहेंगे।

नागपूरमे डॉ. रघुवीरकी अध्यक्षतामें नवीन प्रतिशब्दोंके निर्माणका कार्य जारी है। वहाँ संस्कृतकी सहायतासे ही नये प्रतिशब्द बनाये जा रहे हैं। क्योंकि संस्कृत भाषाकी सहायताके बिना भारतकी किसी भी भाषामें नवीन प्रतिशब्द बनानेका सामर्थ्य ही नहीं है। इस प्रकारका इस संस्कृत भाषाको विद्यार्थियोंके लिये ऐच्छिक बनाना उचित नहीं है।

संस्कृत भाषा सरल है

' संस्कृत भाषा कठिन है ' इस प्रकारकी गलतफहमी बहुत समयसे प्रचलित है। किन्तु यह बात सर्वथा असत्य एवं अनुचित है। इस प्रकारकी गलतफहमीका कारण यह है कि विद्यार्थियोंके तथा संस्कृत भाषाके बडे दुर्भाग्यके कारण बंबई विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त संस्कृतके परीक्षक संस्कृत भाषाके बडे मोटे विद्वान् हुआ करते थे और वे यह समझते थे कि विद्यार्थियोंका संहार करनेसे ही हमारी विद्वत्ताकी धाक जम सकती है। अन्य परीक्षकों का यह हाल न था। इस कारण संस्कृत लेनेवाले विद्यार्थी अनुत्तीर्ण हो जाते थे तथा पर्शियन, पाली, अर्धमागधी आदि लेनेवाले विद्यार्थी अधिक श्रम न करनेपर भी उत्तीर्ण हो जाते थे। इस कारण विद्यार्थियोंमें संस्कृतके प्रति विद्वेषकी

भावना बढती चली गई। इसमें उन युवक विद्यार्थियोंका कोई दोष न होकर सम्पूर्ण दोष इन क्रूर परीक्षकोंका ही है।

वास्तवमें संस्कृत भाषा अत्यन्त सरल है। देखिये—

तस्य पुत्रः गच्छति = उसका लडका जाता है।

तस्य पुत्री गच्छति = उसकी लडकी जाती है।

तस्य यन्त्रं गच्छति = उसका यन्त्र जाता है।

यहां हिन्दीमें ' उसका ' ' उसकी ' तथा ' जाता है ' ' जाती है ' इस प्रकारसे रूप बदलने पडते हैं; किन्तु संस्कृतमें ' तस्य ' और ' गच्छति ' में कोई रूपान्तर नहीं करना पडा।

रामः गृहं गत्वा पुस्तकं आनयति।

आनयति रामः गृहं गत्वा पुस्तकम्।

पुस्तकं आनयति रामः गृहं गत्वा।

आनयति पुस्तकं रामः गृहं गत्वा।

इस प्रकार वाक्यमें शब्दयोजना यथेच्छ की जा सकती है। यह सुविधा केवल संस्कृत भाषामें ही मिलती है। यह सुविधा अंग्रेजीमें तो बिलकुलही नहीं है और न ही हिन्दी, मराठी या गुजरातीमें है।

संस्कृतमें इच्छा हो तो सन्धि करें, इच्छा न हो तो न करें। ' संहिता विवक्षां अपेक्षते ' सन्धिकरना वक्ताकी इच्छापर निर्भर करता है। इस नियमके आधारपर आज संस्कृतमें जो समाचारपत्र प्रकाशित होते हैं वे जहाँ इच्छा होती है वहां सन्धि करते हैं तथा जहाँ इच्छा न हो वहाँ नहीं करते। ' सन्धि न की जाय ' यह सिद्धान्त क्रमशः बलवत्तर होता जारहा है। तथापि सन्धिके जो थोडेसे नियम हैं उन्हे सीख लेना कोई बहुत कठिन नहीं है।

क्रियापदोंके १० प्रकारोंमेंसे वर्तमान, भूत, भविष्य और हेतुहेतुमद्भाव ये चार मुख्य हैं। आज्ञार्थका भी उपयोग किया जासकता है। इनकी सरणी तथा सात विभक्तियोंकी सरणी शब्दरूपावली एवं धातुरूपावलीकी सरणीसे सिखाई जावे। इस प्रकार सरलतासे संस्कृतमें प्रवेश किया जासकता है।

आठ वर्षके बालकोंपर मैंने प्रयोग करके देखा है। ये बालक तीसरे महीने संस्कृत बोल सकते हैं। इस पद्धतिसे प्रतिदिन आधे घण्टे यदि संस्कृत सिखाया जाय तो दो वर्षमें रामायण एवं महाभारतको समझने जितना संस्कृत आसकता है। व्याकरणका कठिन अंश वे चाहें तो आगे सीख सकते हैं। शुद्ध संस्कृत लिखना, शुद्ध बोलना तथा समझना दो वर्षके अध्ययन द्वारा सम्भव है।

अंग्रेजी भाषा १५।२० वर्षोंमें भी शुद्धरूपमें नहीं आ पाती तथा मराठी और हिन्दी की वाक्यरचना जिस प्रकार दूसरोंको कठिन प्रतीत होती है वैसी संस्कृत कठिन प्रतीत नहीं होती।

दूसरी किसी भी भाषाकी अपेक्षा संस्कृत सरल है और इस भाषाके आजानेपर हिन्दी, मराठी, गुजराती, कानडी एवं अन्य भारतीय भाषायें सीख लेना सरल होता है, अतः बंबई इलाकेके शिक्षा विभागसे हम यह नम्र निवेदन करना चाहते हैं कि वे इस इलाकेमें संस्कृतको अनिवार्य विषयके रूपमें स्थान दें। ऐसा करनेपर युवकोंका हिन्दी-मराठी-गुजराती तथा कानडी आदि भाषाका ज्ञान अधिक अच्छा होगा तथा नवीन पारिभाषिक शब्द अन्वर्थक हैं या नहीं यह बातभी वे समझ सकेंगे। अतः शिक्षाविभागको इस ओर ध्यान देना चाहिये।

अखिल भारतीय प्रश्न

यह प्रश्न अखिल भारतीय है। काश्मीरी, पंजाबी, हिन्दी, बंगला, उडिया, मराठी, गुजराती, कानडी, तामिल, मलियाळं, कोंकणी आदि समस्त प्रान्तीय भाषाओंके लिये संस्कृत भाषा मातृभाषा अथवा सहायक भाषाके रूपमें उपयोगी रहेगी ही। ये सम्पूर्ण भाषायें संस्कृत भाषाकी सहायतासे प्रौढ हो सकती हैं। बंगलामें तो ७० प्रतिशत शब्द संस्कृतके हैं। कानडी-तमिल-तेलगू आदि भाषाओंमें भी संस्कृत शब्द लगभग ५७ प्रतिशत तक हैं। अतएव यदि संस्कृत भाषाका अध्ययन अनिवार्यरूपेण कर दिया जाय तो सभी भाषाओंका हित ही होगा। अतः हमारी सरकारसे प्रार्थना है कि संस्कृत भाषाको अनिवार्य विषयके रूपमें वह हाईस्कूलोंके लिये स्वीकार करे।

निवेदनकर्ता— श्री. दा. सातवळेकर
अध्यक्ष-स्वाध्याय-मण्डळ
आनंदाश्रम पारडी, [जि. सूरत]

सभीसे निवेदन

दैनिक एवं मासिक पत्रोंके सम्पादकोंसे, शिक्षकोंसे तथा शिक्षाविशेषज्ञोंसे निवेदन है कि वे इस लेखको अपने पत्रोंमें प्रसिद्ध करें तथा अपना मत व्यक्त करके शिक्षाविभाग तक उसे पहुँचावें।

पारडी १।३।५३ श्री. दा. सातवळेकर

संस्कृत भाषा परीक्षाओंका

केन्द्र वृत्तान्त

(**सूचना—** ' वैदिक धर्म ' में प्रकाशनार्थ अपने केन्द्रके वर्ग, समारोह संस्कृतभाषा प्रचार आदि कार्यका विवरण, समाचार अथवा सूचनादि हमारे पास यथासमय अवश्य भेजनो चाहिये)

औरङ्गाबाद

श्री परीक्षामन्त्रीके हैद्राबादके दौरेके समय जालना केन्द्रके व्यवस्थापक श्री **श्रीराम शास्त्री** शेलगांवकरजीके प्रयत्नोंके फलस्वरूप औरङ्गाबादमें केन्द्र खुलकर वहाँ प्रचार कार्य प्रारम्भ होगया है। वहाँके केन्द्रव्यवस्थापक श्री **ज्ञानेन्द्रजी शर्मा** ने निम्नाङ्कित विवरण प्रकाशनार्थ भेजा है।

श्री **भगवान् रावजी** दूसरे प्रचार कार्यमें अच्छा सहयोग दे रहे हैं तथा परीक्षार्थियोंका तैयार करानेमें विशेष योग दे रहे हैं। श्री पं. **दयाशंकरजी शर्मा**ने संस्कृत वर्गोंको निःशुल्क पढानेका आश्वासन दिया है और वे आजकल पढा भी रहे हैं। श्री पं. **गोविंदरावजी गोस्वामी**ने भी आश्वासन दिया है कि वे इस पवित्र कार्यमें पूर्ण सहयोग प्रदान करेंगे। समय समयपर वे भी वर्गमें पढाकर विद्यार्थियोंको लाभान्वित कर रहे हैं। श्री **गोस्वामीजी** स्थानीय शारदा मन्दिर कन्या हाईस्कूलके प्राथमिक विभागके मुख्याध्यापक हैं। आपने विद्यालयका स्थान संस्कृत वर्गके लिये देकर हमें उपकृत किया है। वर्ग चल रहे हैं और विद्यार्थियोंमें पूर्ण उत्साह है।

आशा है अगले सत्रमें बहुत बडी संख्यामें विद्यार्थी संस्कृत परीक्षाओंमें सम्मिलित होंगे। नगरके कुछ अन्य संस्कृत प्रेमी महानुभावोंने इस पवित्र कार्यमें सहयोग देनेका आश्वासन दिया है। तदर्थ हम उन सबके कृतज्ञ हैं।

हैद्राबाद

हैद्राबादके केन्द्र व्यवस्थापक श्री **माधवरावजी पाठक** B. A. LL. B. वकील लिखते हैं—

यहाँ संस्कृत वर्गोंका प्रबन्ध दो स्थानोंपर किया गया है। १-विवेक-वर्धिनी महाविद्यालय (यहाँ हिन्दी माध्यमके विद्यार्थियोंके लिये व्यवस्था है)। २-वैदिकधर्म प्रकाशिका, शालिबंडा (यहाँ मराठी माध्यमके विद्यार्थियोंके लिये प्रबन्ध है)

गत परीक्षाके अवसरपर श्रीमान् पं. **विनायकरावजी विद्यालङ्कार**, श्रीमान् **गुणवानीजी** इन्स्पेक्टर ऑफ जेल्स, श्रीमान् **बुलचंदजी**, श्रीमान् **धनी** सिटि पेलेस इत्यादि महानुभावोंने सम्पूर्ण कार्यवाही एवं व्यवस्थाका निरीक्षण कर सन्तोष व्यक्त किया।

उपर्युक्त वर्गोंका एक संघ स्थापित हुआ है जिसका नाम ' **संस्कृतवर्ग छात्रसंघ** ' है। इस संघके अध्यक्ष **गणेश प्रसाद** तथा उपाध्यक्ष सुश्री **गंगाबाई** हैं। मन्त्री श्री **अनन्त स्वामी** हैं।

दि. २९-१-५३ को सायं ५॥ बजे श्री **विठ्ठलरावजी देशपांडे** (न्यायमूर्ति श्रेष्ठ न्यायालय) की अध्यक्षतामें छात्र संघकी ओरसे विद्यार्थियोंका स्नेह सम्मेलन अत्यन्त उत्साहसे सम्पन्न हुआ। सबका एक सामुहिक छायाचित्र लिया गया। जलपानके पश्चात् श्री **आर्यव्रतजी शास्त्री**, श्री **गोपालरावजी** अपासिंगीकर, श्री **ऋभुदेवजी**, सुश्री **गंगाबाई** आदिके भाषण हुए तथा समारोह पूर्ण हुआ।

संस्कृत प्रचार समितिका नगर शालाका एक व्यवस्थित कार्यालय भी खोला जा चुका है। हिन्दी प्रचार सभाके कार्यकर्ताओंका इस कार्यके लिये पूरा सहयोग प्राप्त हो रहा है। आशा है इस प्रकार इस कार्यकी भविष्यमें खूब अभिवृद्धि होगी।

जालना

श्रीराम संस्कृत विद्यालयके आचार्य तथा केन्द्र व्यवस्थापक श्री **श्रीराम शास्त्री शेलगांवकर** सूचित करते हैं कि संस्कृतभाषा प्रचार समिति पारडी (सूरत) की संस्कृत प्रारम्भिणी, प्रवेशिका, परिचय तथा विशारदकी परीक्षायें

दि. ३१ जनवरी तथा १ फरवरीको यथासमय सम्पन्न हुई। लगभग १०७ परीक्षार्थियोंमेंसे ७५ परीक्षार्थी उपस्थित रहे। परीक्षास्थल गव्हर्नमेण्ट हाईस्कूल जालना था। परीक्षा कार्यका निरीक्षण सरकारी मिडिल स्कूलके हेडमास्टर श्री रेणुकादास राव घुमाळे बी. ए. तथा श्री थत्ते सा. ने किया। निरीक्षणका अन्य कार्य श्री पुरुषोत्तमराव गर्गे, श्री देहेडकर, श्री कृ. दे. गंगाधरेजी, श्री गोलटगांवकरजी, श्री श्रीपादशास्त्रीजी भारथी आदि महानुभावोंने किया।

केन्द्रकी अन्य सम्पूर्ण व्यवस्था नियमानुसार रखी गई।

उदगीर

दि. ११-१-५३ मध्याह्न ४ से ७ तक श्यामलाल स्मारक विद्यालयके विशाल समाङ्गणमें श्री प. माधवराव बोतसेकर अध्यक्ष उदगीर कांग्रेस कमेटीके हाथोंसे स्थानीय प्रमाणपत्र वितरणोत्सव सम्पन्न हुआ। प्रारम्भमें कुमार सत्यदेवने सुमधुर स्वरमें राष्ट्रगीतका गायन किया। उसके पश्चात् पानसरे गुरुजीका प्रास्ताविक भाषण हुआ और उन्होंने अध्यक्षका प्रस्ताव रखा। अनुमोदन श्री श्रीधराचार्यजीने किया। अध्यक्ष स्थानापन्न होनेपर श्री पं. दंताळेने पुष्पहार अर्पण किया। प्रारम्भमें श्री दिगंबरराव वकील का 'संस्कृतका महत्व' इस विषयपर भाषण हुआ और पं. शंकरराव शास्त्री वकीलका भी भाषण हुआ। इसके बाद श्यामलाल विद्यालयके प्रधान अध्यापक पं. देविदासराव बी. ए. का अत्यन्त गवेषणापूर्ण व्याख्यान हुआ। श्री ठोंमरे गुरुजीने भी इस अवसरपर अपना भाषण दिया। केन्द्राध्यक्ष पं. शिरोले अनन्तशर्मा कवि भूषणका सरल संस्कृतमें भाषण हुआ। इसके पश्चात् अध्यक्ष महोदयके करकमलों द्वारा उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंको प्रमाणपत्र दिये गये। अध्यक्षीय भाषणके पश्चात् राष्ट्रगीत द्वारा सभाका कार्य समाप्त हुआ। इस अवसरपर नागरिकोंकी भी अच्छी उपस्थिति थी।

बहेडी

स्थानीय केन्द्रका प्रमाणपत्र वितरणोत्सव श्री डॉ. आर. एम. देसाई एम. बी. बी. एस (स्कूलके मेनेजर) महोदयके सभापतित्वमें सम्पन्न हुआ। आपका गीतापर लगभग १॥ घण्टे बडा ओजस्वी भाषण हुआ।

स्कूलके प्रधानाचार्य श्रीयुत धर्मेन्द्रजी एम. ए. एल. टी. एल एल बी. का भी संस्कृतके महत्वपर भाषण हुआ। इसके पश्चात् स्कूलके संस्कृताध्यापक श्री पं शिवचरणलालजी शर्मा, शास्त्रीकी तरफसे २॥ सौ गीता तथा २॥ मूल सुन्दर काण्ड रामायण (गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित) श्री सभापतिजीके कर कमलों द्वारा प्रत्येक छात्रको निःशुल्क वितरित की गई। इसीके साथ प्रमाणपत्र भी दिये गये।

आगत श्रोताओंपर भाषणोंका अच्छा प्रभाव रहा। अन्तमें केन्द्रव्यवस्थापक श्री भागीरथीजी गुप्त सिद्धान्त शास्त्रीने आभार प्रदर्शित कर कार्यवाही समाप्त की।

श्री समर्थाश्रम, पोतंगल

दि. ८-२-५३ को श्री समर्थाश्रमके द्वितीय वार्षिकोत्सवके साथ ही प्रमाणपत्र वितरणोत्सव मनाया गया। कार्यक्रम निम्न प्रकारसे था—

प्रातःकाल ९ बजेसे ११ बजेतक ध्वजवंदन, ईश प्रार्थना और श्री विश्वनाथ महाराजके बालकोपयोगी भाषण। सायं ५ से ७॥ बजेतक श्री पं. गोविंदशास्त्रीका श्री समर्थ रामदास स्वामीजीके जीवनपर उद्बोधक व्याख्यान हुआ। पं. कृष्णारावजीका 'प्राचीन गुरुकुल' विषयपर भाषण हुआ। अन्तमें केन्द्रव्यवस्थापकने आश्रम एवं केन्द्रका विवरण सुनाया तथा अपना सारगर्भित भाषण दिया विशेष योग्यता एवं प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए परीक्षार्थियोंको पं. गोविन्द शास्त्रीजीके कर कमलोंद्वारा श्री समर्थाश्रमकी ओरसे पुस्तकोंके रूपमें पारितोषिक बांटा गया।

समारोहकी समाप्तिपर विद्यार्थियोंने आगामी परीक्षामें अधिक संख्यामें सम्मिलित होनेके लिये अपनी इच्छा प्रकट की।

वर्ष ३४ वैदिक धर्म अंक ३

क्रमांक ५१

▲ फाल्गुन, विक्रम संवत् २००९, मार्च १९५३ ▲

प्रभुका अद्भुत सामर्थ्य

अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ् महिमानं रजांसि ।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद्युधा ते ॥

ऋ० ७।२१।६

हे इन्द्र ! (त्वं क्रत्वा) तू अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे (ज्मन् अभिभू) पृथ्वीके ऊपरके सारे शत्रुओंका पराभव करता है । (अध) तथापि (ते महिमानं) तेरी महिमाको (रजांसि न विव्यक्) सारे लोग नहीं जानते । तूने (स्वेन शवसा हि) अपने ही सामर्थ्यसे (वृत्रा जघन्थ) सब वृत्रादि शत्रुओंका नाश किया है । तथापि (शत्रुः) तुम्हारा शत्रु (युद्धा) युद्ध करके (ते अन्तं न विविदत्) तुम्हारे सामर्थ्यका अन्त नहीं देख सकता ।

अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे अपने सब शत्रुओंको दूर करना चाहिये । तथा अपना बल कितना है इसका यथार्थ ज्ञान अपने शत्रुओंको न हो ऐसा सदा प्रयत्न करना चाहिये । चाहे युद्धका समय हो, चाहे शान्तिका समय हो शत्रुको अपना सामर्थ्य अगम्य रहना चाहिये ।

▲▲▲

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप

[लेखाङ्क २४]

(लेखक— पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

● ● ● ● ● ● ●

नाम-जप-द्वारा राष्ट्रीय अभ्युदय

प्राचीन एवं अर्वाचीन भक्तिमार्ग

गत लेखमें प्राचीन आदर्श भक्तोंने किस प्रकार भक्ति की और उसके द्वारा उस उस समय राष्ट्रका उद्धार किस प्रकार हुआ, इसपर प्रकाश डाला गया है। उस भक्तिमें तथा आजकी प्रचलित भक्तिमें कितना अंतर हो गया है, इसका विचार पाठक करें। यह बात तुलनात्मक दृष्टिसे देखनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं है। जो लोग आज भक्तिमार्गका अवलम्बन करते हैं वे ईश्वरके नामका जप किया करते हैं।

प्राचीन समयमें भी नामका जप किया जाता था; किन्तु तब नाम जपके साथ साथ आचरण करनेका एक दृढ एवं निश्चित कार्यक्रम भी था। उसीको व्यवहारमें लाया जाता था। आज उस कार्यक्रमकी जानकारी भी जनता और भक्तोंको नहीं है।

तत्कालीन नाम जप एक विशेष प्रकारके वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय कार्यक्रमका सूचक था। जिससे वह उन्नतिके साधन-मार्गके रूपमें जनताके लिये उपयोगी होता था। आजका नामजप तो केवलमात्र नामका रटना ही बन गया है। उन उन नामोंद्वारा सूचित किया गया कार्यक्रम आज उनके सन्मुख रहा ही नहीं है। इस कारण इसकी स्थिति एक बांझ गायके समान होगई है। बांझ गाय चारा तो खूब खाएगी; किन्तु दूध नहीं देगी। इसी प्रकार आजका नाम-जप समय तो खूब लेता है; किंतु उसके द्वारा वैयक्तिक अथवा राष्ट्रीय उन्नति जरा भी नहीं हो पाती !!!

नामजपद्वारा क्या बनता है, इसपर हम विचार करेंगे। विष्णु सहस्रनामसे बहुतसे लोग परिचित हैं। ईश्वरके सहस्रनाम इस स्तोत्रमें जप करनेके लिये दिये हुए हैं। नाम-जप करनेके लिये ही ये स्तोत्र हैं। विष्णुके इन सहस्र नामोंका पुनः पुनः जप करनेका उल्लेख इसमें है। महर्षि व्यासने इस स्तोत्रको रचा है तथा श्रीमच्छंकराचार्यने इसपर भाष्य किया है।

अर्थका मनन

' **जपः तदर्थभावनम्** ' जप अर्थका मनन करते हुए करना चाहिये। यह थी प्राचीन पद्धति। नामजपका अर्थ है ईश्वरके नामके अर्थका मनन। इस प्रकार अर्थका मनन आज कोई भी नहीं करता; किंतु नामके अक्षरोंका उच्चारण बार बार किया जाता है। प्राचीन एवं अर्वाचीन जप पद्धतिमें यह इस प्रकारका अंतर पड गया है। अर्थ शब्दका आत्मा है। इस आत्माकी ओर ही आज उपेक्षाभाव है और अक्षरोंकी ओर अर्थात् आत्माके शरीरकी ओर ही सबका ध्यान लगा हुआ है। इस विपर्यासके कारण नामजपके फलमें भी विपर्यास होगया है।

पहले थोडासा जप कर लेनेपर भी उसका उचित फल प्राप्त होजाता था। किन्तु आज वर्षों जप करनेपर भी किसी प्रकारका न तो वैयक्तिक और न राष्ट्रीय उत्कर्ष होपाया है।

आज हमारे राष्ट्रमें करोडों लोग भक्तिमार्गी हैं। नाम-जपमें उनका बहुत सा समय चला जाता है। यह समय राष्ट्रोद्धारके लिये साधक होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं होता तो समझना चाहिये कि यह राष्ट्रकी हानि होती है। एक स्वतन्त्र राष्ट्रकी इस प्रकार हानि न होनी चाहिये। प्राचीन पद्धतिका अनुसरण होनेपर भक्तोंकी भक्तिसे राष्ट्रका

उत्थान हुआ करता था; किन्तु आजकी भक्तिसे वैसा नहीं होता। यह बात इतनी स्पष्ट है कि उसे सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं है।

अब हम यह देखेंगे कि प्राचीन भक्तिसे क्या निष्पन्न होता था। हनुमान् और अर्जुनने जो भक्ति की उसके द्वारा राष्ट्रको नवजीवन प्राप्त हुआ, यह सर्वविदित है। हमें यहाँ यह देखना है कि व्यास विष्णुसहस्रनामके जपसे जिस लाभका वर्णन करते हैं वह क्या है-

वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात् क्षत्रियो विजयी भवेत्।
वैश्यो धनसमृद्धः स्यात् शूद्रः सुखमवाप्नुयात्। १२३

" ब्राह्मण ज्ञान सम्पन्न होंगे, क्षत्रियोंको विजय मिलेगी, वैश्य धनधान्यसम्पन्न बनेंगे और शूद्रोंको सुख प्राप्त होगा" इस प्रकार नामजपके द्वारा राष्ट्रमें ज्ञान विज्ञान, शौर्य-वीर्य, धन-धान्य और सुखकी समृद्धि होगी। यह *बात आजसे पांच हजार वर्ष पूर्व श्री व्यासजीने बताई थी।*

इसी प्रकार धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति भी इस नामजपसे होती थी (श्लो. १२४) इसी प्रकार व्यासजी आगे कहते हैं कि—

यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञाति प्राधान्यमेव च।
अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम्। १२६

' यश, स्थायी रहनेवाला धन, उत्तम श्रेय और जातीका नेतृत्व नामजप करनेवालेको प्राप्त होता है ' आज यह सब यदि प्राप्त होने लगे तो उसे कौन छोड देगा? इसी प्रकार—

' न भयं क्वचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विन्दति।
भवत्यरोगो द्युतिमान् बलरूपगुणान्वितः। १२७

' मनुष्य निर्भय होजाता है, वीर्य एवं तेज प्राप्त करता है, निरोगी होता है और बल, तेजस्विता और सुन्दरताको प्राप्त करता है ' यदि ये लाभ नामजपद्वारा हो सकते हैं तो वे आज भी अपेक्षित हैं। इसी प्रकार -

रोगार्तो मुच्यते रोगात् बद्धो मुच्येत बंधनात्।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येदापन्न आपदः। १२८

' रोगी रोगसे मुक्त हो जाएगा, भयभीत भयसे मुक्त हो जाएगा और मनुष्य आपत्तिसे बच निकलेगा।'' दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः०। (१२९) ' अनेक विघ्नोंसे मनुष्य बच जाता है। इसी प्रकार- ' भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभवम्' (१४२) जो ईश्वरका भजन करते हैं उनका पराभव नहीं होता।

*

इस प्रकार व्यासने नामस्मरणके फलका वर्णन किया है। फलश्रुतिके आधारपर कोई अनुमान करना हानिकारक है, इसे हम जानते हैं और इस प्रकारके अनुमान पाठकोंको रुचेंगे भी नहीं। हम इस बातको भी जानते हैं। किन्तु हमारा तो कहना केवल इतना ही है कि यहाँ जिन लाभोंका वर्णन हुआ है वे यदि राष्ट्रके लिये आज भी उपयोगी हैं तो उन्हें हमें उपादेय मानना चाहिये। जिस उपायसे ये लाभ हमारे राष्ट्रमें हो सकें उन उपायोंका अवलंब हमें अपने राष्ट्रकी उन्नतिके लिये करना चाहिये। इसके लिये अन्ध विश्वासको दूर करके हमें खूब सोच विचारकर इसका विचार करना चाहिये। हमें अन्धविश्वास दूर करके इस बातको खुली आंखोंसे देखना है। ऊपर नामजपके जिन फलोंका वर्णन है *उन्हें यदि वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय शीर्षकके अन्तर्गत* करके हम विचार करें तो उसका स्वरूप यह होगा—

नामजपसे वैयक्तिक लाभ

१- ज्ञान, शौर्य, धन तथा सुखकी प्राप्ति होना।
२- यश, श्रेय, शोभाकी प्राप्ति होना।
३- निर्भयता, वीर्य, तेज, निरोगिता और बलकी प्राप्ति।
४- आपत्तिसे मुक्ति।
५- पराभूत न होना।
६- जातीका नेता बनना।

नामजपद्वारा राष्ट्रीय अभ्युदय

१- राष्ट्रमें ज्ञान, शौर्य, ऐश्वर्य और सुखसमृद्धिकी विपुलता होना।

२- राष्ट्रका यश, श्रेय और शोभा बढना।

३- राष्ट्रमें निर्भयताका बढना, पराक्रम करनेकी शक्ति बढना, राष्ट्रकी पौरुष शक्तिकी अभिवृद्धि होना और राष्ट्रका आरोग्य बढकर दीर्घ जीवनकी मर्यादा बढना।

४- राष्ट्रपर आपत्ति आजाय तो उसका दूर होना।

५- राष्ट्रका पराभव न होना तथा पारतन्त्र्यकी प्राप्ति न होना।

६- हमारे राष्ट्रको संसारका नेतृत्व प्राप्त होना।

इन वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय लाभोंको देखकर कोई भी यही कहेगा कि ये सब हमें प्राप्त होने चाहिये तथा राष्ट्रको भी इनकी प्राप्ति होनी चाहिये। किन्तु इस बातपर आज शायद ही कोई विश्वास करेगा कि ये सब बातें नाम जप द्वारा सम्भव हैं। अपितु इसके विरुद्ध हमारे उत्साही युवक यह अवश्य कहेंगे कि इन नामजप और झांझ बजानेवालोंने राष्ट्रकी हानि की है और उनका यह कथन असत्य भी नहीं कहा जा सकता। इसीलिये आज हमें इस बातपर विशेष अन्वेषणपूर्वक विचार करनेकी आवश्यकता है।

व्यासजीने जो कुछ लिखा है वह यों ही भोले भाले रूपमें लिख दिया है, यह भी नहीं कहा जा सकता। व्यासका महाभारत उनकी श्रेष्ठ प्रतिभाका पर्याप्त प्रमाण है। अतः यह कहा जा सकता है कि व्यासने जिस प्रकारके नाम-जपकी इतनी प्रशंसा की है उस जपके करनेकी पद्धति कुछ भिन्न है।

इतिहासका निरीक्षण

ऐतिहासिक दृष्टिसे देखनेपर हमें विदित होगा कि भक्त श्रेष्ठ हनुमान् और अर्जुनने जो भक्ति की उससे राष्ट्रका कल्याण हुआ है। व्यासने जिन लाभोंका वर्णन ऊपर किया है वे लाभ हनुमान् और अर्जुनके भक्तिमार्ग द्वारा हुए हैं। रावणी साम्राज्यके नष्ट करनेकी योजनामें हनुमानने प्रयत्न किया तथा कौरवोंका विनाश अर्जुनने किया। इन दोनों भक्तोंने उस समय जो किया उसके द्वारा तत्कालीन भारतका अभ्युदय हुआ। उपर्युक्त लाभोंकी सूचीमें 'बंधनसे मुक्ति' 'भयसे रहित होकर निर्भय होना' 'पराभूत न होना' और 'अनेक संकटोंसे मुक्ति' ये लाभ दीखते हैं। ये लाभ हनुमान और अर्जुनकी भक्ति द्वारा प्राप्त हुए हैं। रावण और कौरवके अत्याचारी राज्यसे भारतकी मुक्ति इन भक्तोंके प्रयत्नोंसे ही हुई। इस इतिहासको देखनेपर हमें विदित होजाएगा कि व्यासने नामजपद्वारा जिन लाभोंका उल्लेख किया है वे होते अवश्य हैं। उनका उल्लेख योंही नहीं कर दिया गया है।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इस प्राचीन भक्तिकी पद्धति कौनसी थी? ये भक्त किस पद्धतिसे भक्ति किया करते थे? आजकी भक्तिका प्रकार हमें विदित है। ईश्वरके नामका पुनः पुन स्मरण करना, झांझ बजाना, तालबद्ध जप करना, एक या अनेक मिलकर उच्चारण करना, आदि आधुनिक भक्तिके प्रकार हैं! इसके अनेक विध भेद हम पूर्व लेखमें देख चुके हैं।

प्रार्थना चक्र, प्रार्थना दीवारें, दूसरेसे जप कराना, स्वयं नामका उच्चारण करना अथवा बहुतोंका मिलकर नामजप करना आदि ये सब आधुनिक प्रकार हैं। व्यासके समय ये सब नहीं थे। किंतु वह जप—

जपः तदर्थ भावनम्

'जप अर्थात् उसके अर्थकी भावनाको मनमें स्थिर करना' उस अर्थसे अपने मनको सम्पूर्णतः भरकर रखना, उस अर्थसे मनका ओतप्रोत होजाना, तन्मय हो जाना प्राचीन भक्तिका स्वरूप है। आजके भक्त तो नामके अर्थका विचार ही नहीं करते। केवल शब्दका उच्चारण मात्र करते हैं। शब्दके अर्थ रूप आत्माकी ओर बिलकुल ध्यान ही नहीं देते। जपमें 'अर्थ भावना' मुख्यरूपसे है; किन्तु इस ओर आजके भक्तोंका ध्यान ही नहीं है !!!

यदि मुख्यभागकी ओर दुर्लक्ष होजाय तो मुख्यतः जिस फलकी प्राप्ति होनी चाहिये वह होगी भी किस तरह? यही कारण है कि अनेक वर्षोंतक भजन करनेपर भी जो फल मिलने चाहिये वे नहीं मिल पारहे हैं। समय खर्च हो रहा है, श्रम हो रहा है, किन्तु फलकी प्राप्ति नहीं होती। प्राचीन और अर्वाचीन भक्तिमें इतना महदन्तर हो गया है।

मनोरंजन

आधुनिक नामजपद्वारा करने और सुननेवालोंका थोडासा मनोरंजन हो जाता है। मनको एकाग्र करनेके लिये तथा छोटे बडे और ज्ञानी अज्ञानी लोगोंको एक स्थानपर एकत्रित करनेके लिये इन भजनोंका आज उपयोग होता है। क्योंकि विद्वत्तापूर्ण प्रवचन अज्ञानियोंकी समझमें नहीं आता तथा अज्ञानी जिसे समझ सकते हैं वह ज्ञानियोंको रुचता नहीं। यही कारण है कि निम्न स्तरके नीचे और उच्च स्तरके ऊपर ही रहते हैं तथा उनके बीचका अन्तर बढता जाता है और समाजकी स्थिति बिगडी ही रहती है।

आजकी प्रचलित भजनपद्धति द्वारा हम सब स्तरोंको एकत्र बिठाकर श्रद्धाके साथ कुछ न कुछ किया जा सकता हैं। मन मूर्च्छित करके तल्लीनतासी स्थितिमें किन्हीं अभौतिक भावोंका निर्माण भी होता है। यह सब सत्य है। किन्तु हमें तो समाजके निम्नस्तरको ज्ञान दान द्वारा ऊपर उठाना ही चाहिये। इसी प्रकार नीचेके स्तरको नीचे और ऊपरके स्तरको ऊपर शाश्वतरूपेण रखना राष्ट्रीय दृष्टिसे उचित नहीं है।

यदि यह माना जाए कि समाजमें निम्न और उच्च स्तर तो सदा रहेंगे ही और उन्हें एकत्र लानेके लिये आजका यह भक्तिका (नामजपका) कार्यक्रम लाभदायक है तथा यह भी मनमें उच्च भावका निर्माण करता है तो केवल इतनेसे ही सन्तुष्ट होजाना बहुत अच्छी बात तो नहीं है। व्यासके समय नामजपका व्यक्ति और राष्ट्रपर जो इष्ट परिणाम होता था वह यदि आज हमारे राष्ट्रको प्राप्त हो सके तो उसकी आज आवश्यकता है। इसलिये नामोंके अथवा मन्त्रोंके अर्थके भावको समझने और उनका मनन करनेसे क्या हो सकता है तथा इस अर्थके मनन द्वारा व्यक्ति अथवा राष्ट्रके अभ्युदयका क्या कोई अनुकरणीय मार्ग मिल सकता है? इन प्रश्नोंपर विचार करना चाहिये। हम किन्हीं वचनोंपर केवल अन्धविश्वास नहीं रखेंगे। एतदर्थ अर्थके मननसे जो स्फूर्ति मनमें उत्पन्न हो सकती है उसका परिणाम राष्ट्रके जीवनपर किस प्रकार सम्भव है, इस विषयपर अगले लेखमें विचार किया जाएगा।

[लेखांक २५]

नाम--जप द्वारा अभ्युदयका कार्यक्रम

(पिछले लेखोंमें प्राचीन एवं अर्वाचीन भक्तिमार्गके स्वरूपका वर्णन किया गया है। प्राचीन मार्ग वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय अभ्युदयकी ओर लेजानेवाला भक्तिमार्ग था तथा आधुनिक भक्तिमार्ग केवल वैयक्तिक मनोमूर्च्छना निर्माण करके क्षणिक सुखदेनेवाला रह गया है, साथही यह राष्ट्रीय उन्नतिके लिये भी सर्वथा निरुपयोगी सिद्ध हुआ है। प्राचीन भक्तिमार्गका जो फल गत लेखमें हमने देखा है वह वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय क्षेत्रमें पूर्णतः प्राप्त होनेके लिये हम इस प्रचलित भक्तिमार्गमें क्या सुधार कर सकते है? तथा उस प्राचीन नामजपकी पद्धतिसे वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय कार्यक्रम किस प्रकारसे जनताके सम्मुख उपस्थित किया जाता था, इन महत्वके मुद्दोंपर इस लेखमें विचार किया जाएगा)

शब्द और अर्थ

कोई भी शब्द हो वह अपने साथ अर्थ को लेकर आता ही है। शब्द और अर्थकी जोडी है और यह ऐसी जोडी है जो कभी अलग नहीं हो सकती। 'वागर्थौ........ पार्वती परमेश्वरौ' जो कालिदासने कहा है वह सर्वथा सत्य है। शब्दमें अर्थ है और वह उसके उच्चारणके साथही प्रकट होता है, इस सिद्धान्तको प्राचीन नाम-जपकरने वाले ध्यानमें रखते थे। आजके नामका उच्चारण करनेवाले भक्त केवल अक्षरोंका ही ध्यान रखते हैं और अर्थकी तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं रखते।

शब्दमें अर्थ है तथा वह कुछ न कुछ कार्यक्रम निर्दिष्ट करता है, किन्हीं कर्तव्योंको सुझाता है, इस बातको समझ लेनेपर जो शब्द अथवा अक्षर समुदाय मन्त्रके रूपमें जपा जाय उसमें भी कुछ न कुछ अर्थ है, उससे व्यक्त होनेवाला कोई न कोई कर्तव्यका मार्ग है और इसलिये उसके अर्थका मनन करना चाहिये, यह भी सहजही ध्यानमें आ सकता है।

मननके लिये मन्त्र

मन्त्र मननके लिये ही हुआ करता है। शब्द अर्थज्ञान के लिये हुआ करता है। शब्दका उच्चारण करते ही उसका अर्थ ध्यानमें ले आना चाहिये और उस अर्थका मनन करके हमारा कर्तव्य क्या है, यह जान लेना चाहिये, यही इसका तात्पर्य है। 'मन्त्रः मननात्' इस प्रकार यास्कने अपने निरुक्तमें कहा है। इसी उक्तिका यह तात्पर्य है।

नामका जो जप किया जाता है तथा परमेश्वरका जो नाम

लिया जाता है वह मन्त्र मानकर किया जाता है। अर्थात् इस नामरूप मन्त्रका मनन करना ही चाहिये।

मननके विना केवल शब्दोंका उच्चारण 'मन्त्र' का जप नहीं माना जाएगा। वह तो केवल शब्दोंका हल्लागुल्ला मात्र होगा। मनन द्वारा हमें अपने उद्धारका कार्यक्रम समझमें आसकता है। हल्लागुल्ला मचानेसे परिश्रम सफल होगा, किन्तु जीवन सार्थक्यका कार्यक्रम व्यक्त न हो सकेगा।

ईश्वरका नाम ' मन्त्र ' है। मन्त्रके अर्थका मनन करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से हमें अपने जीवनके लिये कोई सफल कार्यक्रम मिल सकता है। वह कार्यक्रम हमें अपने जीवनमें ढालना होता है। जपकी प्राचीन पद्धति इसी प्रकारकी है। इसीके अनुसार अब हम इस बातका विचार करेंगे कि इस मन्त्र-जपसे मनुष्य अपनी उन्नतिका कार्यक्रम किस प्रकार समझ सकता है।

' राम ' एक नाम है। यह नाम ईश्वरका है। यह पवित्र है और तारक है। इसका अर्थ 'आनन्द देनेवाला राम' है। वह दशरथ का पुत्र है तथा दशमुखके साम्राज्यको विनष्ट कर वहाँके ३३ कोटी देवताओंको मुक्त करनेवाला दिग्विजयी राम है' यह है इसका मनन। इस 'राम' नामके मन्त्रने यह भाव यहाँ व्यक्त किया है। इसके द्वारा हमारे जीवनके लिये जो कार्यक्रम निष्पन्न होता है वह यह है-

' हम भी ऐसा आचरण करें जिससे कि दूसरेके आनन्दकी अभिवृद्धि हो, दस इन्द्रियोंका रथ बनाकर हम उसपर चढें, इस दस इन्द्रियोंके रथका हम नियमन करें, इस रथके घोडोंको हम उच्छृङ्खल न होने दें, इन्हें हम अपने आधीन रखें। जो अपनी दसों इन्द्रियोंद्वारा अपने भोगको बढाते हों और उसके लिये जनताको कष्ट देते हों उनका वह दुष्ट व्यवहार बंद करें, सज्जनोंकी रक्षा करें और दुर्जनोंको नष्ट करके जनताजनार्दनको सुखी करनेका प्रयत्न करें। उपर्युक्त मनन द्वारा इस प्रकारका यह कार्यक्रम हमारे सन्मुख रहता है।

भगवद् भक्त हनुमान्‌ने यही कार्यक्रम अपने सम्पूर्ण जीवनमें पूर्ण किया। अर्जुनने पहले तो थोडी आनाकानी की, किन्तु भगवान् श्रीकृष्णने उसे गीताके उपदेश द्वारा ठीक मार्ग बताया और राष्ट्रीय अभ्युदयका कार्यक्रम पूर्ण कराया। केवल ' राम ' रूपी नाम मन्त्र का मनन करने मात्रसे इतना बडा वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय अभ्युत्थान का कार्यक्रम हमारे सामने आजाता है।

मन्त्रके मननसे यह लाभ होता है। यह है प्राचीनकालकी नाम-जपकी पद्धति। हम और भी नामजपके कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं और यह सिद्ध करनेका यत्न करते हैं कि भक्तोंके सामने इसके द्वारा अभ्युदयका कार्यक्रम किस प्रकार सामने आता है।

बहुतसे लोग ' गोपाल कृष्ण ' मन्त्रका जप किया करते हैं। इसका अर्थ है ' गौओंका पालन करनेवाला '। भगवान् श्रीकृष्णके अवतारका मुख्य सूत्र गोपालन ही था, यह बात सर्वविदित है। कृष्णकी भक्ति करनेवाले यदि गायका पालन न करें अथवा म्हैसका दूध पीवें तो श्रीकृष्ण उन पर प्रसन्न होंगे या अप्रसन्न, इसका विचार वे स्वयं करें। आजकी परिपाटी तो इस प्रकारकी है कि एक ओर तो नित्य ' कृष्ण, कृष्ण ' का जप किया जाता है और दूसरी ओर गोपालन जरा भी न किया जाय। साथही यह भी समझा जाय कि हम भक्तिमार्गका अवलंबन करते हैं। अस्तु, ' गोपालकी भक्ति ' से आनेवाला कर्तव्यका भार कोई भी अनुभव नहीं करता यह एक बडा आश्चर्य ही है।

' शूर तथा शूरसेन ' ये दो शब्द भगवान्‌श्रीकृष्ण के नाम विष्णुसहस्रनाममें हैं। भगवान् शूर थे और उनके पास शूर वीरोंकी सेना थी। उनके इन नामोंसे हमें बोध मिलता है कि हमें शूर बनना चाहिये तथा शूरोंकी सेना अपने पास रखनी चाहिये। राष्ट्रमें भी शूर पुरुषोंकी सेना तैयार करनी चाहिये। राष्ट्र संरक्षणका यह कार्यक्रम इन नामोंसे सूचित होता है।

उनका ' शूरजनेश्वर ' नाम हमें अपने अनुयायियोंमें शूरवीरोंकी भर्ती करनेकी सूचना दे रहा है। ' ऊर्जितशासनः ' नाम उनके तेजस्वी राज्यशासनकी सूचना दे रहा है। हमें अपना राज्यशासन भी इसी प्रकार प्रभावशाली बनाना चाहिये, क्योंकि उसका निस्तेज होना अच्छा नहीं। ' विष्वक्सेनः ' विष्णुका यह नाम उनकी सेना विभिन्न मोर्चोंपर तैयार रहा करती थीं इस भावको स्पष्ट कर रही है। इसका मनन करनेपर हमें यह विदित हो

जायगा कि हमें भी अपने राष्ट्रकी रक्षाके लिये उचित स्थानोंपर सेनाका प्रबन्ध रखना चाहिये । ' शत्रुजित्, शत्रु तापनः, शत्रुघ्नः ' ये नाम, युद्धको प्रभावशाली रूपमें सफल करनेका प्रकार बताते हैं । हमारी तैयारी ऐसी होनी चाहिये कि जिससे शत्रु भयभीत होजांय और यदि युद्धका अवसर आही पड़े तो शत्रुका पूर्ण विनाश कर सकने की हमारी तैयारी हो ।

' चतुर्व्यूह ' नाम सेनाकी चारों प्रकारकी व्यूह रचना की सूचना दे रहा है । ' जितामित्रः ' नाम इस अर्थको सूचित करते हैं कि इन्होंने अपने शत्रुओंका पूर्णतः पराभव कर दिया है । पूर्वोक्त सेनाकी तैयारीसे जो कुछ साधना है वह यह कि हमारे शत्रु हमें कष्ट न देते रहें ।

विष्णुके इस प्रकारके सहस्रनामोंका उल्लेख ' विष्णु सहस्रनाम ' में आता है । ये सारे नाम भक्तोंका मार्गदर्शन करनेवाले हैं; किन्तु भक्तोंको चाहिये कि वे उन नामोंके अर्थोंका मनन करके अपने कर्तव्योंका निर्धारण करें ।

पुरुषका पुरुषोत्तम

ईश्वर ' पुरुषोत्तम ' है । पुरुषोंमें जो उत्तम पुरुष होगा वह कैसा होना चाहिये, यह बात इस वर्णन द्वारा साधक समझ सकता है । पुरुषको पुरुषोत्तम बनना है । नरका नारायण बनना है, यह बात यदि सत्य है तो पुरुषोत्तमका वर्णन पुरुषके लिये मार्गदर्शक नहीं हो सकता, ऐसा कोई भी न कहेगा । केवल ' विष्णु सहस्र नाम ' के ही नाम नहीं, अपितु हमारे धर्म ग्रन्थोंमें आया हुआ पुरुषोत्तमका सम्पूर्ण वर्णन मनुष्यके लिये अभ्युदयकारी मार्गदर्शक है । इस बातका ज्ञान सभीके लिये उपादेय है ।

पुरुषोत्तम विश्वका निर्दोष शासनकर्ता है । इसलिये उसका वर्णन निर्दोष शासकका वर्णन है । इसलिये यह राज्यशासकोंके लिये भी मार्गदर्शक है । लोकराज्यमें सभी स्वयं शासक हैं; अतः ईश्वरका ऐसा वर्णन सभीके लिये आदर्शरूपमें स्वीकार करने योग्य है ।

वैदिक एवं पौराणिक ग्रन्थभाण्डारमें जो कुछभी ईश्वरका वर्णन है वह इस दृष्टिसे मनन करने योग्य है । भक्तिमार्गी लोग आज ईश्वरके नामका जप करते हैं, किन्तु ये नाम हमें किस बातका अनुभव कराते हैं, इस ओर वे बिलकुल भी ध्यान नहीं देते। इसीलिये अनेक वर्षोंतक तप करनेपर भी वे कोरेके कोरे ही रहते हैं । यह अवस्था शोचनीय है और उसे शीघ्र दूर करना अभीष्ट है ।

' श्रीराम जयराम जय जय राम ' इस प्रकार मन्त्र जपने की परिपाटी है । लोगोंकी समझ ऐसी है कि इस शब्दका अनेक बार उच्चारण करने मात्रसे हमारा तारण हो जाएगा । किन्तु ये ही लोग इस बातको स्वीकार न करेंगे कि ' फोनोग्राफमें इस मन्त्रकी रेकार्ड बार बार बजानेपर उसका तारण हो जाएगा ' । किन्तु फोनोग्राफकी ही तरह अर्थका मनन न करते हुए मन्त्रका जप करने पर मनुष्यका तारण हो जाएगा, इस बातपर इनका विश्वास अवश्य है !!! मन्त्रतो है ही इसीलिये कि उनके अर्थका मनन किया जाय । पूर्वाचार्योंके इस कथनकी अवहेलना करके आजके भक्त इसी बातपर विश्वास करते हैं कि नामके उच्चारण मात्रसे हमारा तारण होजायगा । साधनमार्गकी इससे अधिक क्या दुरवस्था हो सकती है ! पहले साधन मार्ग की ओर साधकोंका ध्यान बहुत अधिक रहता था, यही कारण था कि तत्कालीन आर्य दिग्विजयी हुआ करते थे और उनकी ओर टेढी नजरसे देखना किसी भी शत्रुके लिये सम्भव नहीं था । किन्तु उन्हींके वंशज, आजके हिन्दु साधनमार्ग की सर्वथा उपेक्षा कर रहे हैं और यही कारण है कि वे अपनी निन्दा भी शान्तभावसे सुन लेते हैं । यह सब स्वकर्मोंका ही फल है ।

उपर्युक्त मन्त्रकी ओर जरा ध्यान दीजिये 'हमें (श्रीराम) सम्पत्ति देनेवाला राम चाहिये । किन्तु हमारे पास सम्पत्ति आजानेपर भी यदि हम विजयी न हुए तो वह सम्पत्ति हमारे पास नहीं रहेगी । इसलिये हमें (जय राम) विजय देनेवाले रामकी आवश्यकता है । किन्तु कभी कभी ऐसा होता है कि जयभी पराजयके समान हानिकारक सिद्ध होता है । अतः (जय जय राम) विजय सच्चे अर्थोंमें विजय सिद्ध होना चाहिये । इसीलिये सच्ची विजय प्राप्त करानेवाला राम हमें अपेक्षित है । ' यही उपर्युक्त मन्त्रका अर्थ है । यदि इसका मनन किया जाय तो हमें कितना बोध प्राप्त हो सकता है ? तथा हमें यदि कोई जय प्राप्त हो जाय तो वह सच्चा जय है अथवा पराजयसे भी अधिक हानिकारक है ? इसका मनन कर लेना चाहिये । यही बात इससे निष्पन्न होती है और वह सर्वथा उचित है ।

इस प्रकारके अनेक मन्त्रोंका जप आज किया जाता है; किन्तु उनसे निष्पन्न होनेवाले सन्देशों की ओर कोई भी ध्यान नहीं देता। इसलिये इस व्यर्थ के हल्लेगुल्लेसे न तो वैयक्तिक और न सार्वजनिक कोई लाभ होता है।

तुकाराम, रामदास आदि की कविताओंमें के उद्धरण अनेक भजनिक कीर्तनके समय गाया करते हैं। किन्तु इनका मनन कोई भी नहीं करता। वास्तवमें इन सन्तोंका काव्य जनसाधारणके लिये मार्गदर्शक है और यदि जनता इनके उपदेशोंके अनुसार आचरण करे तो उससे उनका बहुत कुछ लाभ भी हो सकता है। किन्तु केवल हल्लागुल्ला करनेके सिवा कोई उसपर आचरणकी ओर ध्यानही नहीं देता। यह स्थिति वास्तवमें शोचनीय है। साधन यथाविधि किये बिना सिद्धिकी प्राप्ति सम्भव नहीं है और सिद्धि प्राप्त हुए बिना अभ्युदय भी नहीं हो सकता।

बुद्धपूर्व एवं बुद्धोत्तर विचार

गौतमबुद्धतक साधनमार्गका पालन बडी सख्तीसे करनेका ध्यान रखा जाता था। समाजके नेता इस विषयमें विशेष दत्तचित्त रहते थे। बुद्धने साधनोंको सुगम करनेके लिये जो प्रयत्न किया उसके कारण साधनमार्ग जडसहित विनष्ट होगया। साधनमार्गका यह सरलपना बढते बढते यहाँतक पहुँचा कि जनता केवल अक्षरोंको रटने, दीवारों को कोरने, अक्षरोंके चक्रोंको घुमाने आदिमें ही अपना तारण मानने लगी !!!

इस साधनमार्गका यही शैथिल्य हमारे वैयक्तिक एवं सामाजिक कार्यक्षेत्रमें भी घुस गया। इस कारण संसारकी स्पर्धामें हमारी प्रतिष्ठा भी गिरती जा रही है।

सारांश यह है कि मन्त्रजप अथवा नामजपमें वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय उन्नतिका पर्याप्त कार्यक्रम है और वह उस उस मन्त्रके अर्थके मननसे साधकोंके सन्मुख व्यक्त हो सकता है। इस बातको ध्यानमें रखकर साधकों को चाहिये कि वे क्रियाशून्यता का परित्याग करके अपनेमें क्रियाशीलताकी अभिवृद्धि करें तथा इस प्रकार स्वयंका अभ्युदय प्राप्त करें।

अनुवादक- महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

सूचना— लेखाङ्क २६ तथा २७ वैदिक धर्मके मई तथा जून १९५१ ई. के अङ्कोंमें प्रकाशित हो चुके हैं।

महात्मा प्रदत्त

श्वेत कुष्ठकी अद्भुत जडी

प्रिय सज्जनो ! औरोंकी भाँति हम अधिक प्रशंसा करना नहीं चाहते ! यदि इसके ३ दिनके लेपसे सफेदीके दागका पूरा आराम जडसे न हो तो मूल्य वापस। जो चाहें ≈) का टिकट भेज कर शर्त लिखा लें। मू० ३) तेज दवाका मू० ५) रु०

सफेद बाल काला

खिजाबसे नहीं, हमारे आयुर्वेदिक सुगन्धित तेलसे बालका पकना रुककर सफेद बाल जडसे काला हो जाता है। यह तेल दिमागी ताकत और आँखोंकी रोशनी बढाता है। मूल्य २॥), एकत्र ३ का ६॥), बाल आधा पका हो ३॥) एकत्र ३ का ९) और कुल पका हो ५) एकत्र ३ का १२) रु० । बेफायदा साबित करनेपर १००) रु० इनाम

पं० श्री० भागवतप्रसाद, पो० बॉक्स नं० ११६, पो० गया

चतुर्वेद-स्वाहाकार-यज्ञ

(एक संवाददाता)

विलेपार्ले (मुंबई उपनगर) में ता० २६ अक्टूबर १९५२ से ता० २ नवंबर १९५२ तक एक बडा विशाल ब्रह्म पारायण यज्ञ हुआ। इसका संक्षिप्त वृत्तान्त यह है-

उपक्रम

श्रीमान् स्वर्गीय सेठ शूरजीवल्लभदासजीके मनमें एक विशाल ब्रह्मपारायण यज्ञ करके उसमें भारतवर्षके समस्त प्रान्तोंके समस्त घनपाठी वैदिक ब्राह्मणोंको बुलाकर, उनसे वेद पारायण तथा स्वाहाकार यज्ञ करवाकर उनका योग्य सत्कार करनेकी इच्छा थी। उन्होंने अपने जीवनमें ३।४ वार इस यज्ञको संपन्न करनेका प्रयत्न किया, पर बीचमें ऐसे विघ्न आये कि, जिनसे उनके जीवनमें उनकी इच्छा पूर्ण न हो सकी और अकालमें ही कैनसरकी व्याधीसे उनकी मृत्यु होगयी। अनेक प्रयत्न करनेपर भी इस व्याधीको कोई हटा नहीं सके और अन्तमें उनको इस लोकको छोडना ही पडा।

उनके सुपुत्र श्री सेठ प्रतापसिंह, श्री विक्रमसिंह और श्री दिलीपसिंहजीने अपने पूजनीय पिताजीकी इच्छा पूर्ण करनेका निश्चय किया, यह—

अनुव्रतः पितुः पुत्रः। अथर्व० ३।३०।२

इस अथर्वश्रुतिके अनुकूल ही था। अनेक दिन इस विषयका विचार होता रहा और अन्तमें कार्तिक शुक्ल अष्टमी तदनुसार २६ अक्टूबरके दिन इस यज्ञका प्रारंभ करनेका निश्चय हुआ। तदनुसार सब तैयारियां शुरू हो गयी। भारतके विभिन्न प्रान्तोंसे उत्तम १३० घनपाठी बुलाये गये। यज्ञकर्ममें प्रवीण याज्ञिक तथा ७ याजक निमन्त्रित हुए और ज्ञानसत्रके लिये करीब २५ आर्य संन्यासी और उच्च कोटिके भिन्न भिन्न प्रांतोंके आर्य पण्डितों तथा ३।४ भजनोपदेशक और अच्छे संगीतज्ञोंको निमन्त्रित किया गया।

विलेपार्लेमें स्व. शूरजीवल्लभदासजीके विशाल उद्यानमें एक मनोहर भव्य और विशाल यज्ञमण्डप शास्त्रोक्त विधिके अनुसार लंबाई और चौडाई तथा स्तंभसंख्या और ऊचाई रखकर निर्माण किया गया था। इसके मध्यमें ऊंचा यज्ञ-स्थान निर्माण किया था और चारों ओर उससे दोफूट नीचा स्थान वेदपारायणके लिये खास सुविधासे बनाया था।

इस यज्ञमण्डपसे थोडी ही दूरी पर एक बडा मण्डप स्त्रियोंके लिये बनाया था जिसमें दो हजार स्त्रियां सुखसे बैठ सकती थीं। इन दोनों मंडपोंके समान्तरमें व्याख्यान मंडप था। इसमें ५।७ हजार मनुष्य बैठ सकते थे इतना इसका विस्तार था। सब मण्डप अच्छीतरह सजाये थे, तथा चित्ताकर्षक बनाये थे।

कार्यक्रम ता० २६ अक्टूबरसे २ नवंबरतक था। प्रातः काल ८ बजेसे दोपहरके १२ बजेतक और दोपहरके २ बजेसे शामके ५॥ बजेतक यज्ञ और वेदपारायण होता था और शामके ५॥ से ८ बजेतक व्याख्यान विद्वान पंडितोंके होते थे। प्रतिदिनका यह कार्यक्रम ८ दिनतक चलनेवाला था।

ध्वज वंदन

ता० २६ अक्टूबरका प्रथम दिन था। इस दिन प्रातः ठीक ८ बजे श्री धुरेन्द्र शास्त्रीजी प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्र० सभाके करकमलोंसे ओ३म् के ध्वजका उत्तोलन हुआ। श्री स्वामी आनंदमहाराज गंगोत्री निवासीके भाषणसे इसका प्रारंभ हुआ। स्वयंसेवकोंने चारों ओर लोगोंको यथा स्थान खडा किया, सब लोग पंक्तिमें खडे रहनेके पश्चात् पं धुरेन्द्र शास्त्रीने ध्वज स्तंभपर चढाया और ओंकारका यह गेरुवे रंगका ध्वज आकाशमें फहराने लगा। इसके बाद श्रीस्वामी आनदजीका समयोचित भाषण हुआ। आपने '' वैदिक आर्योंका ओंकार ध्वज था और वह लेकर वे विश्वभरमें विजय पाते थे। आज यही ध्वज अपने यहां ऊपर फहराया है और इस ध्वजके नीचे यज्ञके द्वारा विश्वशान्तिकी स्थापनाका यत्न करना है। ''इस भाषणके पश्चात् ध्वजवंदन हुआ और यज्ञका प्रारंभ हुआ।

शान्तिपाठ-स्वस्तिवाचन

यज्ञमंडपमें उच्च स्थानपर चारों वेदोंके हवन करनेके लिये चार कुण्ड बनाये थे। पूर्व दिशामें चतुष्कोण कुण्ड ऋग्वेदके लिये, पश्चिम दिशामें पूर्ण गोलकुण्ड सामवेदके लिये, दक्षिण दिशामें यजुर्वेदके लिये अर्धगोलकुण्ड और उत्तरदिशामें कमलाकृतिकुण्ड अथर्ववेदके लिये यथा शास्त्र यथाप्रमाण विधिवत् बनाये थे। इसका सब कार्य श्री पं० श्रीधर शास्त्री वारेजीने स्वयं ५।६ दिन पहिले आकर अपनी देखरेखमें किया था। कुण्डनिर्माण शास्त्रके अनुसार सब माप ठीक तरह लेकर बनाया था। और किसी तरह इसमें दोष न रहे, इसकी उत्तम दक्षता पहिलेसे ही की गयी थी।

ठीक ९ बजे वेदवेत्ता घनपाठी पंडित अपने नियतस्थान पर बैठ गये और स्वस्तिवाचन तथा शान्तिपाठ हुआ। इसके उपरान्त श्री यजमान श्री सेठ प्रताप सिंहजी अपने सब परिवार तथा बन्धुजनोंके समेत यज्ञमण्डपमें प्रविष्ट हुए और वहां यज्ञ कर्मके लिये ऋत्विग्वरण करनेके लिये बैठे। उस समय ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्व वेदके शान्तिपाठके मंत्र क्रमपूर्वक बोले गये और स्वस्ति-पुण्याहवाचन होकर ऋत्विजोंका वरण किया गया। प्रत्येक वेदके लिये ऋत्विज, आचार्य और ब्रह्मा पृथक् पृथक् नियुक्त किये गये और सब कार्यका निरीक्षण करनेवाला सर्वोपद्रष्टा श्री पं० श्री० दा. सातवलेकरजीको नियुक्त किया गया। सब यज्ञकार्य यथाविधि होरहा है या नहीं, यह देखना और निर्विघ्न कार्य सिद्ध होनेके लिये जो जिस समय करना तथा करवाना चाहिये, वह सब करना और करवाना आदि कार्यका सब भार इनपर था।

प्रत्येक वेदके हवन कुण्डके यज्ञका निरीक्षण करनेके लिये प्रत्येक वेदका स्वतंत्र ब्रह्मा था। और सबका निरीक्षण करनेवाले ये सर्वोपद्रष्टा थे इस तरह ऋत्विग्वरण हुआ। यजमानने सब उपस्थित ब्राह्मणोंका पूजन पुष्पमाला, चंदन आदिसे किया और चांदीके संध्यापात्र देकर सबको यथास्थान बिठलाया।

अग्निमन्थन

इतना होते ही अग्निमन्थन करके अरणियोंसे अग्नि सिद्ध किया गया। १५ मिनिटोंमें प्रथम अग्निका दर्शन हुआ, उस समय सब दर्शकोंके मुखपर अपूर्व आनंद झलकने लगा। पौन घण्टेतक मन्थन होता रहा। जितना अग्नि चारों कुण्डोंमें डालनेके लिये चाहिये उतना होते ही, विधि-पूर्वक सुवर्णपात्रमेंसे वह अग्नि चारों कुण्डोंमें मन्त्रोच्चारण पूर्वक रखा गया और अग्निप्रबोध पूर्वक ठीक तरह अग्निको प्रज्वलित करके थोडा हवन भी हुआ।

इतना होनेतक दो पहरका १ बजा। इसलिये प्रातः कालकी कार्यवाही समाप्त करके, दोपहरका उपहार और विश्रामके लिये सब द्विजगण अपने स्थानपर गये।

इस प्रथम दिन सवेरेकी कार्यवाही समाप्त होनेके लिये १ बजनेके कारण आज दोपहरकी कार्यवाही ठीक ३ बजे शुरू हुई। इस समयसे हवनका तथा ब्रह्मपारायणका कार्य ठीक रीतिसे शुरू हुआ।

हवनका कार्य

प्रत्येक कुण्डके पास प्रत्येक वेदके चार या छः याजक बैठते थे और अपने वेदके मंत्र बोलकर हवन करते थे। ऋग्वेदका हवन ११००० का था यजुर्वेदका ५००० का था, सामवेदका १८०० का था और अथर्व वेदका करीब ६००० मन्त्रोंका था। इस कारण ऋग्वेदियोंको प्रतिदिन आठ घण्टे पूरे हवन करना पडता था। यजुर्वेदी और सामवेदियोंको करीब करीब प्रतिदिन ३॥ या ४ घण्टे हवन करना पडता था और साम-वेदियोंका हवन प्रतिदिन दो ही घण्टे था।

चारोंवेदोंका संमान

हवन कुण्ड चार थे और चारों कुण्डोंके मध्यमें चारों वेदोंकी स्थापना उच्चतम सुन्दर और रमणीय स्थानमें की थी। इनके नीचे सप्त धान्योंका " सर्वतोभद्र मण्डल ' किया था। वह उत्तम चित्रकारीका नमूना देखने योग्य था। अग्निमन्थनके पूर्व सब प्रेक्षकोंको देखनेके लिये अवसर दिया था। और जो उपस्थित थे वे सब इस सुन्दरचित्रको देख सके थे। और जिन्होंने देखा उन्होंने उसकी बडी प्रशंसा की। सप्तधान्योंका ऐसा उत्तम सुन्दर चित्र बन जायगा, ऐसा किसीके भी ध्यानमें नहीं था। पर प्रत्यक्ष देखनेसे यज्ञके द्वारा कुण्ड निर्माणसे जिस तरह ज्यामिति सुरक्षित रही, उसी तरह चित्रकारी भी किस तरह सुरक्षित हुई इसका प्रत्यक्ष प्रमाण ही आज सबके सामने प्रत्यक्ष हुआ।

इस सर्वतो भद्र मण्डल पर चारों वेदोंकी स्थापना हुई। यही स्थान संपूर्ण मण्डपमें सबसे ऊंचा था। और वेदोंका स्थान सबसे ऊंचा रहना ही चाहिये, क्योंकि यह भारतीय सभ्यताका अथवा वैदिक सभ्यताका मूल आधार है।

वेदस्थान सबसे ऊंचा, यज्ञस्थान उससे थोडा नीचा और पारायणस्थान उससे थोडा नीचा था। इससे जो दर्शक आते थे उनको सब यज्ञका उत्तम दृश्य दिखाई देता था।

ब्रह्म पारायण

ब्रह्मपारायणका अर्थ वेदका परायण है। वेदका मुखसे उच्चारण करनेका नाम पारायण है। ऋग्वेदके याजक ६ और पारायणी ४० ब्राह्मण थे, तैत्तिरीय संहिता तथा काण्व-संहिताके केवल पारायणी ब्राह्मण १०।१२ थे। वाजसनेयी संहिताके याजक ६ थे और पारायणी ३६ थे। सामवेदके पारायणी ७ और याजक ४ थे और अथर्ववेदके याजक ४ थे और पारायणी ६ थे। सामवेदी और अथर्ववेदी भारतभरमें संख्यामें कम होनेसे इनकी संख्या कम उपस्थित थी।

प्रत्येक वेदके पारायणी ब्राह्मण अपने कुण्डसे थोडी दूर मण्डपमें अपने नियत स्थानपर बैठते थे। यज्ञ कुण्डोंके चारों ओर पारायणके लिये स्थान नियत किया गया था। और जिस स्थानपर प्रथम दिन ब्राह्मण बैठे थे वे अन्त दिन तक उसी स्थानपर बैठकर पारायण करते थे।

पारायणीय ग्रन्थ

प्रत्येक वेदकी संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा सब विकृतियां अर्थात् पद, क्रम, जटा, घनका पाठ किया जाता था। एकका पाठ दूसरेके पाठमें विघ्न न डाले, इसलिये आवश्यक स्थान मध्यमें छोड दिया था।

यह वेदपाठ सब दर्शकोंको सुनाई देवे, इसलिये दूर ध्वनि वर्धक (लाऊडस्पीकर) यंत्र हरएक वेद पाठके पास दिनमें एक एक घण्टा रखा जाता था। इससे सब प्रकारका वेद पाठ दर्शक दूरसे भी उत्तम रीतिसे सुनते थे।

मानसिक शान्ति

वेदपाठके श्रवणसे मनकी चंचलता दूर होती है और मनको एक प्रकारका स्वाभाविक आनंद प्राप्त होता है इसका अनुभव जो लोग वहां आये उन्होंने अच्छी तरह इस यज्ञमें किया।

चारों वेदोंका पाठ एकस्थानपर सुनना यह बात आज-कलके दिनोंमें अपूर्व है। किसी स्थानपर ऐसा दृश्य नहीं दीखता। इसलिये इस यज्ञको देखनेके लिये और चारों वेदोंका पाठ श्रवण करनेके लिये पोरबंदर, बडोदा, आनंद, पेटलाद, अमदाबाद, कलकत्ता, कोचीन, कोल्हापुर, मिरज, नेरळ, सातारा, नगर, रायचूर, आदि दूरके स्थानोंसे लोग आये थे और श्रद्धासे बैठकर आनंद लूटते थे। इसमें इतने स्थानोंका पता चला। इसमें न समझते हुए जो आये होंगे, उनकी गणना तो पृथक् ही होगी। दूर दूर तक इस यज्ञका ध्वनि पहुंचा था और दूरसे भी लोग आते थे। स्त्री और पुरुष दोनों इतनी दूरसे आये थे यह आश्चर्यकी बात है।

प्रतिदिन नियत वेदपाठ और हवन शामके ५॥ बजे समाप्त होता था और वेदपाठी अपने सायंसंध्या और भोजन करनेके लिये अपने स्थानमें जाते थे क्योंकि दिनभ समय इनको केवल उपहार पर ही रहना होता था। इस-लिये शामका इनका भोजन थोडा जलदी करना अत्यावश्यक ही था।

व्याख्यानोंका कार्यक्रम

शामके ५॥ बजे आर्यपंडितोंके व्याख्यान व्याख्यान-मंडपमें होते थे। प्रतिदिन एक नया अध्यक्ष और तीन आर्य पंडितोंके व्याख्यान और दो भजनिकोंके भजन ऐसा प्रतिदिनका कार्यक्रम था।

क्रमसे अध्यक्ष श्री सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, सर सी. पी. रामस्वामी अय्यर, गणपतिशंकर देसाई बम्बईके मेयर, सदोबा पाटिल बम्बईके कांग्रेस समितिके अध्यक्ष, श्री. शान्तिलालजी शाह बम्बईके गवर्नमेन्टके लेबर मिनिस्टर, श्रीमती धनवंती रामराव, श्री. रा. ब. नारायणलाल बंन्सीलाल पित्ती, दि. ब. कृष्णलाल मोहनलाल जवेरी. ये हुए थे और व्याख्याता श्री स्वामी आनंदजी, श्री स्वा. स्वतंत्रानंदजी, श्री. स्वामी व्रतानंदजी, पं. राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्रीजी, आचार्य मेधाव्रतजी, पं. भगवद्दत्तजी, आचार्य पं. वैद्यनाथ शास्त्री, पं. सुरेन्द्रशर्माजी गौड, पं. श्री. दा. सातवलेकरजी, श्री दे. भ. कुंवर चांदकरणजी

शारदा, पं. धर्मदेव वेदवाचस्पति, ब्र. अखिलानन्दजी, श्री डा. मंगलदेवजी शास्त्री, पं. ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु, ब्रह्मर्षि दैवरात शर्मा, म. कृष्णजी आदिके विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुए।

व्याख्यान नाना प्रकारके उत्तमोत्तम धार्मिक विषयोंपर होते थे। पहिले दिन स्त्रीपुरुष समुदाय दो-सहस्रसे अधिक था। यह प्रतिदिन बढता ही गया और अन्तिम दिन ८।१० हजारतक उपस्थिति हुई थी। व्याख्यानोंद्वारा ८ दिन अच्छा ज्ञानयज्ञ हुआ। अनेक व्याख्यान छापकर बांटे भी गये इससे पाठकोंको स्थायी लाभ हुआ ही होगा। प्रत्येक व्याख्यान पहिलेसे तैयार किया हुआ, विशेष अभ्याससे सिद्ध हुआ था, इस कारण यह ज्ञानसत्र अच्छा प्रभावी हुआ और धर्मप्रचारकी दृष्टिसे इसका विशेष ही लाभ होनेकी संभावना है।

दर्शकोंकी भीड

इधर यज्ञमण्डपमें प्रतिदिन सवेरे और शामको नियत समय हवन तथा ब्रह्मपारायण चलता था। प्रतिदिन दर्शकोंकी भीड बढती ही जाती थी। स्त्रीपुरुष दर्शक आते, प्रदक्षिणा यज्ञस्थलको करते और अपना दान अर्पण करते थे; इसकी रकम ३२००) के करीब जमा हुई थी। कई लोग चावल तथा गेहूं रखते, कई लोग फलफूल लाते और अर्पण करते थे, कईयोंने तो गुलाबके २१२ सो फूल लाये थे और दक्षिणाके साथ ब्राह्मणोंको दिये थे। ऐसा ३।४ वार हुआ। दूसरे केले बांटते, तीसरे सतरे या मोसंबी बांटते थे। नारियल तो सैंकडों आते थे। कई स्त्रियां प्रतिप्रदक्षिणामें एक एक फल रखती थी। ऐसी प्रदक्षिणाएं कईयोंने १०८ तक की थी। कई लोग प्रति प्रदक्षिणा २।२ आने या ४।४ आने रखते थे। यहां अनेक प्रकारका जनताका भक्तिभाव हमने यज्ञके प्रति देखा।

पूर्णाहुतीकी अपूर्वता

पूर्णाहुतीका दिन २।११।५२ रविवारका था। इस दिन सवेरेसे ही भीड हो रही थी। शामके समय और पूर्णाहुतिके समय तो इतने बडे मैदानमें खडा रहनेके लिये भी स्थान नहीं था। इतने दर्शक आगये थे। स्त्रीपुरुष वृद्ध बाल, बालिकाएं सबकी एक भीड हो चुकी थीं। पूर्णाहुती एक घण्टातक चली थी और सब दर्शकोंने इसमें अच्छा रस लिया था।

पूर्णाहुति होनेतक जनताने दो आने चार आने, पैसा दो पैसा अग्निको अर्पण करनेके लिये दिये थे उसका सब मिलकर करीब बत्तीस सौ रु. जमा हो गया था। वह सब धन उपस्थित ब्राह्मणोंको बांट दिया था। पूर्णाहुतीके पश्चात् यजमान तथा पारिवारिक जनोंपर मंगल अभिषेक किया गया और ब्राह्मणोंके वेदोक्त आशीर्वाद हुए। तत्पश्चात् उपस्थित ब्राह्मणोंको अर्थात् निमंत्रित वेदपाठियोंमेंसे प्रत्येकको यजमानकी ओरसे १००) दक्षिणा, ३०) के चांदीके संध्यापात्र और रेशमी उत्तरीय दिये गये। सर्व साधारण जनताकी ओरसे जो फुटकर दान मिला था उससे प्रत्येक वेदपाठीको २०) मिला। इसके अलावा धोतियां तीन, ओढनेके वस्त्र, पीतलकी थालीयां, जलपात्र, चांदीका पंचपात्र बैठनेके आसन आदि फुटकर दान ४०।५० रु. तकके मूल्यका (जो ३।४ सेठोंने दिया) वह हुआ। और भी श्रीमंतोंने अन्य पदार्थ पंडितोंको दिये थे।

जो विशेष विद्वान आये थे उनका विशेष सत्कार किया गया। सर्वोपद्रष्टा, ब्रह्मा, पुरोहित आदिकोंका विशेष सत्कार किया गया। इसी तरह सभी साधुसंन्यासियोंका अच्छा सत्कार किया और रात्रीके भोजनके पश्चात् सबको योग्य स्टेशनोंपर पहुंचा दिया। इस तरह यह विश्वशान्तिके लिये किया हुआ यज्ञ सफलतापूर्वक संपन्न हुआ।

इस यज्ञके अन्तिम दिन वेदपारायण, यज्ञ, आदिके देखनेके लिये इतने लोग आये थे, जो आनंद उठा रहे थे, उसका वर्णन करना असंभव है। वह तो स्वयं देखकर ही अनुभव करनेका विषय है। सब लोग इस यज्ञको देखकर धन्यताके ही शब्द बोलते थे।

यज्ञका व्यय

इस यज्ञका व्यय निम्नलिखित प्रकार अनुमानसे हुआ ऐसा दीखता है- कुल वेदपाठी १३० थे और आर्य संन्यासी तथा पण्डित तथा भजनीक मिलकर ३० थे।

पंडितोंका प्रवास व्यय	१००००)
वैदिकोंकी दक्षिणा तथा सत्कार	२८०००)
मंडपव्यय	१२०००)
भोजन व्यय	१३०००)
यज्ञार्थ घी तथा सामग्री आदि	५०००)
फुटकर व्यय	८०००)
	७६०००)

गौका परिशुद्ध घी

करीब करीब इस यज्ञमें इतना व्यय हुआ होगा। यह अनुमान है। यज्ञके लिये परिशुद्ध गौका ही घी दक्षिण भारत मलबारसे छोटे ग्रामोंसे गौका मक्खन लाकर तैयार करवाया था। इसलिये यज्ञस्थानपर सैंकडों स्त्रियां घी अर्पण करनेके लिये भक्तिसे लाती थी, वह यज्ञमें लिया नहीं था। सब दिन परिशुद्ध गोघृत ही वर्ता गया है, यह इस यज्ञकी विशेषता समझनी चाहिये।

इसी तरह हवनसामग्री हवर्नीय वस्तुओंका संभार यथाविधि तैयार करके लिया था। इसमें केशर, कस्तूरी आदि पदार्थ यथाप्रमाण मिलाये थे।

स्थानका प्रबंध

मुंबईमें स्थानका अभाव रहता है। इसलिये भोजन तो विलेपार्लेकी अमृतवाडीमें होता था, और रहनेका प्रबंध वहांसे चार मील अन्धेरीके विद्याभवनके छात्रावासमें किया था और मोटर बससे सब पंडितोंका लाना और पहुंचाना होता था। सब प्रबंध अत्यंत उत्तम था। और प्रबंधके विषयमें किसी तरहकी त्रुटी नहीं थी।

प्रातः काल स्नानके लिये पानी रहता था। गरम जलसे स्नान करनेवालोंको गरम जल मिलता था। संध्या होते ही ६॥ बजे दूध या चहा जो चाहिये सो तैयार रहता था। मोटरोंसे ठीक ८ बजे यज्ञस्थानमें पंडित जाते थे। वहां चार घण्टे यज्ञ होता था। १२ बजे उपहार, दो घण्टे विश्राम, फिर यज्ञ, पारायण, फिर याजकोंका भोजन, पंडितोंके व्याख्यान, रातके ८॥ बजे सर्व साधारणके भोजन, तदुपरान्त पण्डित लोग विविध धर्म विषयोंकी चर्चा करते थे और १० बजे रातको सब सो जाते थे। इस तरह प्रतिदिन होता था।

मुंबई जैसे नगरमें ऐसा सुप्रबंध करना यह एक कुशलतासे ही होनेवाला कार्य है। पर वह यहां किया गया। इसलिये यजमान तथा उनके सहचारी धन्यवादके लिये योग्य हैं।

इस तरह प० पू० स्वर्गीय श्रीसेठ शूरजी वल्लभदासजीकी जो हार्दिक इच्छा यज्ञ करनेकी थी, वह उनके सुपुत्र श्री सेठ प्रताप सिंहजीने करके दिखाई। इसलिये उनका धन्यवाद गाना योग्य है।

संन्यासाश्रम

उनकी दूसरी इच्छा संन्यासाश्रम शुरू करनेकी थी। वह संन्यासाश्रम करीब एक लाख रु. व्यय करके इसी यज्ञस्थलके पास बन रहा है। यह भी २।३ महिनोंके बाद संन्यासियोंके लिये खुलेगा और यहां संन्यासी आकर अपनी पारमार्थिक साधना करते रहेंगे।

वेदपाठियोंका सत्कार

उनकी तीसरी इच्छा वेदपाठियोंको प्रतिवर्ष प्रत्येकको २०० रु. वर्षासन सूदसे देने योग्य निधि मुंबईमें जमा करना और उसका एक स्थायी ट्रस्ट बनाना और उससे वेद पाठियोंको प्रतिवर्ष उत्तेजनार्थ दक्षिणा देना यह थी। इसको भी विचार हो रहा है। इस यज्ञके समय ही कुछ सेठोंने अपनी अनुकूल संमतियाँ दी हैं और इसका विचार चल रहा है। यह निधि १५।२० लाख रु. की होगी है। इसलिये इसमें अनेक धनिकोंकी सहायता चाहिये। चारकी सदी सूदसे ६०।७० हजार रु. प्रतिवर्ष जमा हो और वे २०० वैदिक घनपाठियोंको दक्षिणा रूपमें बांटे जांय और इससे वेद पाठियोंको प्रोत्साहन मिले और अपने भारत देशमें वेदपाठियोंकी संख्या बढे। यह पवित्र ध्येय इस ट्रस्टका है। किस तरह यह होता है यह थोडे ही समयमें दिखाई देगा।

इसका विचार चल रहा है इतना ही आज हम कह सकते हैं।

ईश्वर इसको संपन्न करें।

राष्ट्रके समस्त उन्नायकोंकी सेवामें

मैं उन समस्त राजकीय विभागों, संस्थाओं एवं कार्यकर्ता महानुभावोंसे साग्रह निवेदन करता हूँ कि जो अपने राष्ट्रको समुन्नत करनेके लिये अपना एक एक क्षण और धनका एक एक कण मातृवेदीपर अर्पण किए हुए हैं, जो भारतका गौरवशाली अतीत पुनः अपनी आँखोंसे वर्तमानमें ढला हुआ देखना चाहते हैं, जो मातृभूमिके निवासियोंको एक रूपमें देखकर अन्य देशोंसे बन्धुत्वका नाता जोडनेके लिये समुत्सुक हैं वे संस्कृतभाषाप्रचार कार्यमें अपना पूरा पूरा सहयोग प्रदान करें। इस भाषाको अपनाकर ही हम हिन्दीके राष्ट्रभाषात्वको पूर्णतः सफल बना सकते हैं। नहीं तो अर्थशास्त्र, राजनीति, शासन, कृषि, विज्ञान आदिमें जिस हिन्दीका प्रयोग करने हम जा रहे हैं, उसे समझ भी न सकेंगे। भाषाकी दृष्टिसे जो प्रान्तीयताके भाव उत्पन्न होते हैं वे संस्कृतका प्रचार होनेके पश्चात् स्वयं दूर हो जायेंगे। क्योंकि संस्कृत-भाषा सबकी जननी है, वहाँ भेद भाव कैसा? अफगानिस्तान, ईरान, पोलेण्ड, फ्रान्स और जर्मनीमें उत्तरोत्तर संस्कृतके प्रति अनुराग बढता जा रहा है। आफ्रीका निवासी भारतीय भी इसके प्रचारमें अपनी रुचि बढा रहे हैं।

इन अनुकूल परिस्थितियोंको ध्यानमें रखकर तथा उत्तरोत्तर जनताकी संस्कृतभाषा सीखनेकी अभिरुचिको देखकर इन परीक्षाओंका प्रारम्भ किया गया है।

भारतके उपप्रधान श्री वल्लभभाई पटेलने भी पूज्य बापूके संपर्कमें (यरवडा मन्दिरमें) इसी प्रणालीसे संस्कृत सीखी थी। यह प्रणाली सरल, सुबोध एवं शीघ्र समझमें आजानेवाली है। अतः आबालवृद्ध सभीके लिये यह समान रूपमें उपादेय हैं।

भारतके कोने कोनेमें हम इसका प्रचार करना चाहते हैं। जो सहयोगी होना चाहे उनका हार्दिक स्वागत है।

हमारी कुल मिलाकर चार परीक्षायें हैं तथा वे वर्षमें दो बार होती हैं। संस्कृतके अध्यापक ही हमारी इस योजनाको फलवती बनानेमें प्रमुख हैं। सच पूछा जाय तो राष्ट्रके संस्कृत शिक्षकोंके लिये यह एक अत्यन्त व्यापक एवं गौरवप्रद क्षेत्र है, जिसमें कार्य करके वे राष्ट्रभारती एवं राष्ट्रमाताकी महान् सेवा कर सकते हैं।

अबतक सारे भारतमें हमारे ३५६ केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। श्रीनगर, पटियालासे लेकर गौहाटीतक एवं अजमेर, बम्बई कुम्भकोणमसे हैद्राबाद और पटना आदितक सारे भारतमें इसका प्रचार है। गुजरातका एवं हैद्राबाद स्थान इस कार्यमें सर्वप्रथम हैं। उनके पश्चात् मध्यप्रान्त, हैद्राबादराज्य, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, आन्ध्र, पंजाब एवं आसामका है। इसके साथ ही आफ्रिकामें भी प्रचार हो रहा है।

उत्तरोत्तर यह कार्य बढता जा रहा है-जो जन-अभिरुचिका परिचायक है। अविरत एवं अविश्रान्त रूपसे ज्ञानकी इस प्राचीन किन्तु नवीन उज्वल ज्योतिको-भारतको प्रकाशमय रखनेके लिये-प्रज्वलित रखना है। अपने भाव एवं श्रमका स्नेहदान देकर इसे प्रज्वलित रखनेका पवित्र भार संस्कृतज्ञोंपर विशेष रूपसे है। हमें पूर्ण आशा एवं विश्वास है कि यह अखण्ड ज्योति दिन प्रतिदिन अधिक ज्योतिष्मती बनकर एक दिन सभीके लिये मार्गदर्शिका बन जायेगी।

हमारे इस कार्यकी सम्पूर्ण जानकारीके लिये विवरण पत्रिका एवं अन्य जानकारीके पत्रक कोई भी मंगा सकते हैं। हमारी योजनाके अनुसार किसी भी शिक्षणालयके हिन्दी या संस्कृत शिक्षक अथवा प्रधानाध्यापक अपने शिक्षणालयमें केन्द्र स्थापित कर सकते हैं। केन्द्र स्थापित करनेके लिये परीक्षातिथिसे तीन मास पूर्व आवेदन पत्र आने चाहिये। परीक्षातिथियाँ समयपर वृत्तपत्रों एवं हमारे हिन्दी, मराठी, गुजराती मासिकोंमें प्रकाशित की जाती है। सम्पूर्ण पत्र व्यवहारके लिये निम्नपतेसे पत्र व्यवहार कीजिये—

निवेदक,

महेशचन्द्रशास्त्री, परीक्षा-मन्त्री

स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम' **किल्ला-पारडी** (जि. सूरत)

दिव्य जीवन

(श्री. अरविन्द)

[अनुवादक— चन्द्रदीप]

प्रथम अध्याय

मानव अभीप्सा

परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम्। व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥ कियात्या यत्समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान्। अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥

कुत्स आंगिरस- ऋग्वेद १-११३ ८, १०।

वह उनके लक्ष्यका अनुसरण करती है जो परेको ओर प्रस्थान कर रही है, वह आगे आनेवाली उषाओंकी सनातन परम्परामें पहली है, यह उषा फैल रही है जीवनके सत्वको बाहर लाती हुई, किसी मृतको जगाती हुई। ....

कितना है इसका क्षेत्र जब यह उन ऊषाओंके साथ समन्वित होती है जो पहले चमकी थीं और जो अब चमकेगी? वह प्राचीन प्रभातोंको चाहती है, उनके प्रकाशको पूरा करती है; अपनी रोशनीको आगे बढाती हुई वह उनके साथ एक हो जाती है जो आगे आनेवाली हैं।

त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः। अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥

वामदेव- ऋग्वेद, ४।१।७

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि। ... ... अग्निः ॥

वामदेव- ऋग्वेद ४.२.१।

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ॥

वामदेव- ऋग्वेद ४. ४. ५।

त्रिविध हैं वे परम जन्म इस अग्निदेवके जो इस जगतमें है, वे सत्य हैं, वे स्पृहणीय हैं; यह वहां खुला-फैला अनन्तके भीतर गति करता है और विशुद्ध, प्रकाशमान और सब कुछ को भरता हुआ जगमगाता है। ... जो मृत प्राणियोंमें अमर है, ऋत-सत्यका अधिष्ठाता है, वह एक देव है और अग्निके रूपमें हमारे अन्दर प्रतिष्ठित रहकर हमारी दिव्य शक्तियोंको क्रियान्वित करता है। ......

ऊपरकी ओर उठ हे अग्नि! सब आवरणोंको चीर डाल हमारे अन्दर जो देवकी शक्तियां हैं उन्हें प्रकट कर दे।

अपने जाग्रत विचारोंसे उद्बुद्ध होकर मनुष्य सबसे पहले जिस महान कार्यमें व्यापृत हुआ वह केवल उसकी, पहली व्यापृति ही नहीं, अपितु वही वह उच्चतम व्यापृति है जहां तक मनुष्यके विचारकी सूझ पहुंच सकती है; और चूंकि संदेहवादके कई अतिदीर्घ कालोंका अतिक्रमण कर यह व्यापृति बनी रहती है और प्रत्येक बार जब-जब इसे निकाल बाहर किया जाता है तब-तब यह पुनः अपने स्थान पर आ जमती है, इससे यह प्रतीत होता है कि यह मनुष्यके लिए अपरिहार्य है और यही इसकी अन्तिम व्यापृति है। यह अपने आपको व्यक्त करती है ईश्वर विषयक आन्तर बोधमें, पूर्णताकी प्रेरणामें, विशुद्ध सत्य और अमिश्र आनन्दकी शोधमें, किसी निगूढ अमृतत्वके भानमें। मानव ज्ञानकी प्राचीन ऊषाएं इस सतत अभीप्साका प्रमाण हमारे लिये रख गई हैं, आज मानव-जाति प्रकृतिके बाह्य रूपोंके सफल विश्लेषणोंसे अघाई हुई तो दीखती है पर तृप्त व संतुष्ट नहीं और अपनी आदिम कामनाकी ओर फिरसे लौटनेकी तैयारी कर रही है। ज्ञानका जो सबसे पहला सूत्र है वही सूत्र अन्ततक रहेगा-ईश्वर, ज्योति, मुक्ति, अमृतत्व।

जातिके ये अटल आदर्श एक ओर तो हमारी सामान्य अनुभूतिके विपरीत पड़ते हैं और दूसरी ओर किन्हीं उच्चतर और गम्भीरतर अनुभूतियोंका समर्थन करते हैं, वे अनुभूतियां जो मनुष्यके लिए असाधारण हैं और अपनी संगठित समग्रतामें, केवल किसी क्रान्तिकारी व्यष्टिगत

प्रयासके द्वारा या किसी विकासात्मक सर्वसाधारण प्रगतिके द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। अपनी अभीकी पशुभावापन्न अहमात्मक चेतनामें भागवत सत्ताको जानना, उसे पा लेना और वही हो जाना, अपने अभीके धुंधले या अन्धेरे भौतिक मनको पूर्ण विज्ञानमय प्रकाशमें बदल देना, शारीरिक पीडा और मानसिक कष्टसे घिरी हुई अभी जो क्षणिक तुष्टि मिलती है उसकी जगह शान्ति और स्वयं स्थित आनन्दकी स्थापना करना, मान्त्रिक आवश्यकताओंके समूहके रूपमें जो यह जगत् हमारे सामने है इसमें एक अनन्त स्वातन्त्र्यकी प्रतिष्ठा करना, मृत्यु और सतत परिवर्तनोंके आधीन जो यह शरीर है इसमें अमर जीवनका आविष्कार करना, उसकी उपलब्धि करना—यही है जड प्रकृतिमें ईश्वरका प्राकट्य और प्रकृतिके पार्थिव विकासका लक्ष्य। सामान्य भौतिक बुद्धि अपनी चेतनाके वर्तमान संगठनको ही अपनी सम्भावनाओंकी सीमा समझती है; उपलब्ध तथ्य और अनुपलब्ध आदर्शोंमें जो प्रत्यक्ष विरोध है, इस विरोधके कारण उसकी दृष्टिमें अनुपलब्ध आदर्शोंका कोई मूल्य नहीं है, और यही इस विषयमें उसकी अन्तिम युक्ति है। परन्तु यदि हम संसारकी क्रियाओंको अधिक विचारपूर्ण दृष्टिसे देखें तो ऐसा प्रतीत होगा कि उसका यह विरोध प्रकृतिकी गम्भीरतम पद्धतिका ही एक भाग है और यह इस बातकी मुहर छाप है कि संसारकी क्रियाओंमें उसकी सम्पूर्ण अनुमति है।

क्योंकि जीवनकी सभी समस्याएं मूलतः सामंजस्यकी ही समस्याएं हैं। ये पैदा होती हैं एक ओर तो उस असामंजस्यके आभाससे जिसका अभीतक कोई समाधान नहीं हुआ है और दूसरी ओर हमारे अन्तःस्थित किसी सहज बोधसे जो हमें यह बतलाता है कि इस असंगतिके पीछे कोई संगति, कोई एकता है, पर जो अभी अप्रकट है। किसी असामंजस्यका समाधान किये बिना मनुष्यका व्यावहारिक और पशुभाग तो चुप-चाप पडा रह सकता है, किन्तु उसकी सर्वथा जागृत मनबुद्धिके लिये ऐसा करना असम्भव है, और उसका व्यावहारिक भाग भी प्रायः इस समस्याको दाब-दूबकर या उसके सम्बन्धमें किसी स्थूल, तत्कालोपयोगी अथवा जैसा-तैसा निपटारा करके ही इस सर्वसाधारण आवश्यकतासे अपना पिंड छुडाता है। क्योंकि तत्वतः, समस्त प्रकृति किसी सामंजस्यका ही शोध कर रही है, इस शोधको मन जितना अपने अनुभवोंकी व्यवस्थामें करता है उतना ही प्राण और स्थूलभूत अपने क्षेत्रमें करते हैं। जिन पदार्थोंका जीवनमें उपयोग करना है उनमें जो यह आपातदृष्ट अव्यवस्था है अथवा जिन तत्वोंका प्रयोग करना है उनमें जो यह आपातदृष्ट वैषम्य है, फिर चाहे यह वैषम्य किसी ऐसे विरोधका रूप ही क्यों न ले जिसका मेल न बैठाया जा सकता हो, वह जितना ही अधिक होगा उतना ही अधिक बलवान प्रोत्साहन हमें प्राप्त होगा और इसके फलस्वरूप हम एक अधिक सूक्ष्म और शक्तिशाली सुव्यवस्थामें जा पहुंचेंगे, जहां किसी हलकेसे प्रयासके द्वारा हम नहीं पहुंच सकते। जिसकी कर्मण्यताकी स्वयं अवस्था ही तमस् है उस स्थूल द्रव्यमय रूपके साथ सक्रिय प्राणमय जीवनका सामंजस्य उन विपरीत तत्वोंकी समस्याओंमेंसे एक समस्या है जिसे प्रकृतिने हलकर लिया है तथा इस समस्याका समाधान वह और भी महत्तर जटिल प्रकारसे तथा अधिक अच्छी तरहसे करनेमें लगी हुई है; क्योंकि इस समस्याका सम्पूर्ण समाधान तो तब होगा जब हमारा पशु-शरीर, जो हमारे मनका पोषण करता है, सर्वथा सुसंगठित होकर अपने इस भौतिक रूपमें ही अमृतत्वको प्राप्त होगा। विपरीत तत्वोंकी दूसरी समस्या है सचेतन मन और सचेतन इच्छाका भौतिक रूप और जीवनके साथ सामंजस्य; क्योंकि स्वयं रूप और जीवन प्रत्यक्ष रूपसे सचेतन नहीं है और वे अधिकसे-अधिक यान्त्रिक या अवचेतन इच्छा ही कर सकते हैं। इस समस्याका हल करनेमें भी प्रकृतिने आश्चर्यजनक परिणाम दिखाया है और उत्तरोत्तर अधिकाधिक आश्चर्यमय काम कर दिखानेमें लगी हुई है; क्योंकि यहां प्रकृतिका अन्तिम चमत्कार यह होगा कि इस पशुभावापन्न चेतनाके लिये सत्य और ज्योतिकी शोध समाप्त हो जायगी, वह स्वयं सत्यमय और ज्योतिर्मय हो जायगी और उसको वह व्यावहारिक सर्वशक्तिमत्ता प्राप्त हो जायगी जो प्रत्यक्ष और सिद्ध ज्ञानकी प्राप्तिसे ही मिलती है। इसलिए, इससे भी ऊपरके विपरीत तत्वोंका सामंजस्य करनेके लिये मनुष्यकी ऊर्ध्वमुखी प्रेरणा केवल युक्तिसंमत ही नहीं, बल्कि यही उस विधान और प्रयासकी न्याय संगत पूर्णता होगी जो, ऐसा मालूम होता है कि, प्रकृतिकी मूलगत कर्म पद्धति है और उसके विश्वव्यापी प्रलयका एक मात्र अर्थ है।

हम लोग जडतत्वमें प्राणके निवर्तन (विकास) की बात कहा करते हैं, जडतत्वमें मनके निवर्तन (विकास) की बात कहा करते किन्तु निवर्तन एक ऐसा शब्द है जो केवल बाह्य घटनाओंको ही बतलाता है, उसके आशयको नहीं जताता। क्योंकि यदि हम इस विषयके वेदान्तिक समाधानको स्वीकार कर यह नहीं कहें कि जडतत्वमें प्राण और प्राणमें मन पहलेसे ही आवर्तित (अनुप्रविष्ट) हैं, कारण सारतः जडतत्व और कुछ नहीं बल्कि प्राणका ही परदेसे ढका हुआ एक रूप है एवं प्राण और कुछ नहीं बल्कि चेतनाका ही परदेसे ढका हुआ एक रूप है, तो फिर हमारे पास इस बातको स्पष्ट करनेके लिये और कोई युक्ति नहीं रह जाती कि प्राणको जड प्राकृतिक तत्वोंसे और मनको जीवित रूपसे क्यों निवर्तित (विकसित) होना चाहिये। और इस उपर्युक्त हलको स्वीकार कर लेनेपर इस बातके लिये आपत्ति करनेकी गुंजायश बहुत कम हो रह जाती है कि इस निवर्तन-पंक्तिमें और आगे कदम क्यों न बढ़े और यह क्यों न मान लिया जाय कि स्वयं मनोमय चेतना भी इन प्रकार स्थितियोंका, जो मनके परे हैं, एक आकार, एक परदा मात्र ही है। और सत्य, ईश्वर, ज्योति, आनन्द, मुक्ति और अमरत्वको प्राप्त होनेके लिये मनुष्यकी जो अजेय प्रेरणा है वह इस निवर्तन-शृंखलामें अपने योग्य स्थानको प्राप्त होती है और यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक अपरिहार्य प्रेरणा है जिसके द्वारा प्रकृति मनके परेके तत्वोंका निवर्तन (विकास) करना चाहती है और यह प्रेरणा उतनी ही स्वाभाविक, सत्य और वास्तविक प्रतीत होती है जितनी कि उसकी प्राणके निवर्तनकी प्रेरणा, जिसकी स्थापना उसने स्थूलभूतके कतिपय आकारोंमें की है, अथवा उसकी मनके निवर्तनकी प्रेरणा, जिसकी स्थापना उसने प्राणके कतिपय आकारोंमें की है। यह प्रेरणा प्रकृतिके विभिन्न पात्रोंमें कम या अधिक स्वच्छन्द रूपसे निवास करती है और इसकी जिज्ञासात्मक इच्छा शक्तिकी श्रेणियां सदा ऊपरकी ओर आरोहण करती रहती हैं; जैसे वहां, वैसे ही यहां, नवीन निवर्तन (विकास) के लिये जो जो उपकरण और वृत्तियां आवश्यक हैं उनको यह क्रमशः निवर्तित कर रही है और उनको पूर्ण रूपसे निवर्तित करनेके लिये यह बाध्य है। जिस प्रकार धातु और उद्भिजमें स्थित प्राणकी आंशिक संवेदन सम प्रतिक्रियाओंमें मनकी ओर एक ऊर्ध्वगामी प्रेरणा होती है, जो, जबतक मनुष्यमें आकर मनका पूर्ण संगठन न हो जाय तबतक जारी रहती है, उसी प्रकार स्वयं मनुष्यमें भी किसी उच्चतर तथा दिव्य जीवनकी ओर एक ऊर्ध्वगामी प्रेरणाका आरोहणक्रम है जो कि, यदि अधिक नहीं तो, उस जीवनकी एक तैयारी तो है ही। पशु एक सजीव प्रयोगशाला है जिसमें, ऐसा कहनेमें आता है कि, प्रकृतिने मनुष्यको गढा है। मनुष्य स्वयं, हो सकता है कि एक मननशील और जीती-जागती प्रयोगशाला हो जिसमें और जिसके सचेतन सहयोगसे प्रकृति अतिमानवको देवताको गढनेकी, अथवा हम ऐसा क्यों न कहें कि ईश्वरको ही प्रकट करनेकी इच्छा रखती है। क्योंकि विवर्तन (क्रम विकास) यदि एक ओर प्रकृतिके द्वारा उसकी प्रगतिशील अभिव्यक्ति है जो प्रकृतिमें आवर्तित (अनु-प्रविष्ट) होकर सोया या अर्ध जागता रहा है, तो दूसरी ओर यह प्रकृतिकी अपनी ही निगूढ दिव्यताका प्रत्यक्ष प्रकाश भी है। तब हम प्रकृतिके निवर्तन (विकास) को किसी विशिष्ट अवस्थामें उससे यह नहीं कह सकते कि " बस तुम यहीं रुक जाओ," नहीं हमें यह अधिकार है कि इस अवस्थासे आगे बढनेकी कोई इच्छा जतलाने या किसी प्रकारका प्रयास करनेपर किसी धर्माभिमानी मनुष्यके भावोंमें यह कहकर हम उसकी निन्दा करें कि उसका यह प्रयास उसकी उच्छृंखलता या धृष्टता है या किसी युक्तिवादीके भावोंमें यह कहें कि यह तो एक रोग या मतिभ्रम है। यदि यह सत्य है कि आत्मा जडतत्वमें आवर्तित (अन्तर्लीन) है और आपातदृष्ट प्रकृति प्रच्छन्न ईश्वर ही है, तो स्वयं अपने अन्दर भगवान्‌की अभिव्यक्ति करना और अन्दर और बाहर हर जगह परमेश्वरका साक्षात्कार करना ही मनुष्यके लिये पृथिवीपर उच्चतम और अत्यन्त उचित ध्येय है।

इस प्रकार पशु शरीरके अन्दर दिव्य जीवनका, नश्वर गृहमें वास करनेवाली अमर सत्ताका या सद्वस्तुका परिच्छिन्न मनों और विभाजित अहंकारोंके अन्दर अपने आपको प्रकट करती हुई एकमेवाद्वितीय और विश्वव्यापी चेतनाका, देशकाल और विश्वब्रह्माण्डका अस्तित्व केवल जिसके द्वारा ही संभवित होता है उस परात्पर अवर्णनीय देश कालातीत दिव्यसत्ताका सनातन विरोधाभास और

सनातन सत्य और इन सबमें निम्न भावोंके द्वारा अनुभवगम्य एक उच्चतर सत्य मानव जातिकी विचारशील बुद्धिके सामने और साथ ही उसके अनवच्छिन्न सहजबोध या सहजज्ञानके सामने अपना औचित्य स्वयं प्रतिपन्न करते हैं। कभी-कभी इस बातके लिये उद्योग किया जाता है कि उन प्रश्नोंको सदाके लिये छोड दिया जाय जिनके विषयमें न मालूम कितनी बार यह घोषणा की जा चुकी है कि तर्क-बुद्धिसे इनका समाधान नहीं किया जा सकता और यह कि मनुष्योंको इस बातके लिये समझा-बुझाकर राजी कर लिया जाय कि वे अपनी मानसिक कर्मण्यताओंको, जगतमें उनका जो जड-प्राकृतिक जीवन है उसकी व्यावहारिक और तात्कालिक समस्याओंकी परीधिके अन्दर ही बांध रखें, लेकिन इस प्रकारके टालमटोलोंका असर कभी भी स्थायी नहीं होता। मनुष्य-स्वभाव जिज्ञासाके और भी प्रबलतर आवेगके साथ अथवा उन शंकाओंका तुरन्त समाधान कर डालनेकी एक अधिक तीव्र क्षुधाके साथ इसके क्षणिक प्रभावसे बाहर निकल आता ही है। इस क्षुधासे रहस्य पथ लाभ उठाता है और जो प्राचीन धर्म संदेहवादके कारण विनष्ट या निरर्थक हो गये थे उनके स्थानपर नये धर्म पैदा होने लगते हैं, क्योंकि संदेहवाद, जिसका काम जिज्ञासा और अनुसन्धान था, अपने अनुसन्धानको पर्याप्त मात्रामें आगे बढानेके लिये अनिच्छुक था और इसीलिये वह भी मनुष्यको संतोष न दे सका। किसी सत्यको इनकार करने या उसका गला घोटनेका इसलिये उद्योग करना कि वह अपनी बाह्य क्रियाओंमें अभीतक स्पष्ट नहीं है और प्रायः अन्धविश्वास या कुसंस्कारके अन्दर ही दिखाई देता है- यह स्वयं एक प्रकारसे ज्ञानका विरोध करना ही है। यदि किसी जागतिक आवश्यकतासे इसलिये भागनेकी इच्छा की जाय कि वह दुःसाध्य है, तात्कालिक स्पष्ट परिणामोंसे उसके औचित्यको सिद्ध करना कठिन है, अपनी क्रियाओंको नियमित करनेमें उसकी गति मंद है, तो इसका तो अन्तमें यही फल होगा कि हम प्रकृतिके सत्यको सर्वथा इनकार कर देंगे और महती माताकी प्रचंड इच्छाका विरोध करेंगे। यह अधिक अच्छा और युक्ति संगत होगा कि उस चीजको हम स्वीकार करें जिसे भगवती माता हमें सामूहिक रूपसे त्यागने नहीं देंगी और उसे हम अंधबोध, निष्प्रभ स्फुरण और अनिर्दिष्ट स्पृहाके क्षेत्रसे ऊपर उठाकर वहां ले जांय जहां बुद्धिका प्रकाश है और जहां सचेतन रूपसे अपनेको परिचालित करनेवाला प्रबुद्ध संकल्प है। और यदि संबुद्ध सहज ज्ञान या आत्मप्रकाशक सत्य की कोई उच्चतर ज्योति है जो मनुष्यके भीतर या तो अभी रुकी हुई और प्रभाव हीन है या बीच-बीचमें अपनी झलक भर दिखा जाती है, मानो वह किसी परदेके भीतरसे काम कर रही हो या कभी-कभी अपना रूप दिखा जाती हो, जैसा कि उत्तर-ध्रुवके भौतिक आकाशोंमें यदा कदा अनेक प्रकारके प्रकाश दिखाई दे जाते हैं, तो भी हमें अभीप्सा करनेसे घबराना नहीं चाहिये। क्योंकि यह सम्भव है कि चेतनाकी आगामी उच्चतर स्थिति ऐसी ही हो जिसका कि मन केवल एक रूप और एक आवरण मात्र ही है तथा हमारे प्रगतिशील आत्मविस्तारका मार्ग इस ज्योतिकी प्रभाके अन्दरसे ही उस उच्चतम स्थितिमें जाता हो जो कि मानव-जातिका अन्तिम विश्राम-स्थान है।

अध्याय २

दो नकार

जडवादीका निषेध

स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा ... ॥

तैत्तिरीय उपनिषद् -भृगुवल्ली (३), अनुवाक् २.

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तं होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति ॥

तैत्तिरीय उपनिषद् भृगुवल्ली ३, अनु. २

उसने तप किया विचारकी तपस्यामें चित् शक्तिको प्रदीप्त किया। और तप करके इस ज्ञानको प्राप्त हुआ कि

अन्न (जड़तत्व, स्थूलभूत, जड़ प्रकृति) ही ब्रह्म है। क्योंकि अन्नसे, ही यह सब भूत (प्राणी) उत्पन्न हुए हैं; उत्पन्न होकर, अन्नके प्राण ही वे बढ़ते हैं और यहांसे प्रस्थान करते हुए अन्नमें ही चले जाते हैं। फिरसे वह अपने पिता वरुणके पास गया और बोला, "भगवन्! मुझे ब्रह्मका उपदेश कीजिये।" पर वरुणने उससे कहा — "(फिरसे) अपनी चित्-शक्तिको प्रदीप्त कर (तप कर) और ब्रह्मको जान, क्योंकि तप ही ब्रह्म है।"

पृथिवीपर दिव्य जीवनके लिये, मर्त्य जीवनमें अमृतत्व के आनेके लिये कोई आधार ही नहीं रहेगा यदि हम केवल यही नहीं मानें कि सनातन आत्मा इस शरीर-रूपी भवनका निवासी है, इस परिवर्तनशील पोशाकको पहननेवाले हैं, बल्कि जिस जड़ पदार्थसे यह भवन निर्मित होता है। यह पोशाक बनायी जाती है उसके विषयमें भी यह स्वीकार करें कि यह एक योग्य और उत्कृष्ट उपादान है, जिसमेंसे आत्मा सदा अपने वस्त्रोंको बुनता रहता है, अपने भवनोंकी अनंत श्रेणियोंका बारी-बारीसे निर्माण करता रहता है।

यह भी सशरीर जीवनसे भागनेकी वृत्तिसे रक्षा करनेके लिये पर्याप्त नहीं है यदि हम, उपनिषदोंकी तरह, जीवनके इन दो चरम तत्त्वोंके बाह्य रूपोंके पीछे सार-रूपसे रही हुई अभिन्नताको देखते हुए उन्हीं प्राचीन ग्रंथोंकी भाषामें यह न कह सकें कि "अन्नं ब्रह्म" — जड़तत्व भी ब्रह्म है और उस बलवान् रूपकको उसका योग्यस्थान न दे सकें जिसके द्वारा इस भौतिक विश्वको भागवत सत्ताका बाह्य शरीर कहकर वर्णन किया गया है। न ही जड़-तत्त्व (अन्न) और ब्रह्मका एक होना — चूंकि ये परम तत्त्व बाह्य दृष्टिके सामने इतने अधिक अलग-अलग मालूम होते हैं — तर्क बुद्धिके लिये मान्य होगा यदि हम आत्मा और अन्न (जड़तत्त्व) के बीच एक-पर-एक तत्त्वोंका जो तांता लगा हुआ है, (जैसे कि प्राण, मन, विज्ञान और वे तत्त्व जो मनको विज्ञानके साथ जोड़ते हैं) उन्हें स्वीकार करनेसे इन्कार करें। अन्यथा ये दोनों तत्त्व इतने परस्पर-विरोधी जान पड़ेंगे कि उनके मिलनकी कोई संभावना ही नहीं रहेगी। वे जो किसी अशुभ दाम्पत्य-संबंधमें बंध गये हैं और विच्छेद ही जिनके लिये एकमात्र युक्तिसंगत समाधान है। तब इनको अभिन्न समझना, एकको दूसरेकी उपाधिमें प्रतिभासित करना विचार-बुद्धिकी एक कृत्रिम सृष्टि हो जाती है जो तथ्यसिद्ध न्यायके विरुद्ध पड़ती है और केवल अलौकिक रहस्यवादके द्वारा ही संभव हो सकती है।

यदि हम इसी बातको पकड़े रहें कि एक ओर केवल विशुद्ध आत्मा है और दूसरी ओर एक यांत्रिक अबोध तत्त्व या क्रियाशक्ति और एकको ईश्वर या आत्मा और दूसरेको प्रकृति कहें, तो इसका अपरिहार्य परिणाम तो यही होगा-कि या तो हम ईश्वरके अस्तित्वको अस्वीकार करेंगे या फिर प्रकृतिसे ही मुंह फेर लेंगे, क्योंकि ऐसा करनेसे विचार बुद्धि और जीवन, दोनोंके लिये ही यह अनिवार्य हो जाता हैकि वे इनमेंसे एकको चुन लें। विचार-बुद्धि या तो ईश्वरको अस्वीकार करती और कहती है कि ईश्वर केवल कल्पनाका भ्रम है या फिर वह प्रकृतिको अस्वीकार करती और कहती है कि प्रकृति केवल इंद्रियोंका भ्रम है, जीवन या तो अशरीरी आत्माको अपना लक्ष्य बना लेता और संसारसे जुगुप्सित होकर अथवा आत्मविस्मृति-कारी भावोल्लासमें आकर अपने आपसे भाग जाता है या फिर अपने अमृतत्वसे ही इन्कार करता और ईश्वरसे मुंह फेरकर पशुभावकी ओर मुंह कर लेता है। पुरुष और प्रकृतिमें अर्थात् सांख्योंके निष्क्रिय ज्योतिर्मय पुरुष और उनकी मंत्रवत् परिचालित सक्रिय शक्तिमें कोई मेल नहीं है, उनके परस्पर-विरोधी अड़ धर्ममें भी नहीं; उनके विरोधका समाधान न तो केवल एक ही प्रकारसे हो सकता है कि यह जो जड़वत् संचालित कर्मण्यता है वह उस अक्षर विश्रांतिमें पहुंचकर समाप्त हो जाय जिसपर वह अपने रूपोंके निष्फल जुलूसको व्यर्थ ही प्रतिबिंबित कर रही थी। शंकरका निर्वाक् निष्क्रिय ब्रह्म और उनकी नाम-रूपात्मक माया, ये दोनों भी सांख्यके समान ही विपरीत और विसंगत सत्ताएं हैं, इनके कठोर विरोधका पर्यवसान तो एक ही प्रकारसे हो सकता है कि यह असंख्य माया-सृष्टि शाश्वत शांतिके एकमात्र सत्यमें लय हो जाय।

जड़वादियोंका मार्ग अधिक सरल है; उनके लिये यह संभव है कि आत्माको अस्वीकार करके अपने सिद्धांतका वे इतना स्पष्ट प्रतिपादन कर डालें जो तुरंत जीको जंच जाय, और यह भी एक तरहका सच्चा अद्वैतवाद ही होगा—या तो जड़तत्व (अन्न) का अद्वैतवाद या फिर अनश्वरकिका शक्ति का अद्वैतवाद—परंतु यह संभव नहीं कि अपने मतवादकी इस अनमनीय कठोरतामें वे सदाके लिये डटे रहें। अंतमें

उन्हें भी किसी अज्ञेयको लाकर खडा करना पडता है जो वैसा ही निश्चेष्ट, सात विश्वब्रह्माण्डसे वैसा ही अलग और अलिप्त है जैसा कि सांख्योंका निष्क्रिय पुरुष या शंकरका शांत आत्मा। परंतु इससे कोई हेतु सिद्ध नहीं होता, यह तो विचार बुद्धिकी अटल मांगोंको किसी अस्पष्ट स्वीकृतिके द्वारा केवल टाल देना है या फिर जिज्ञासाकी सीमाको आगे बढानेसे इन्कार करनेके लिये एक बहाना करना है।

अस्तु, इन व्यर्थके विरोधोंसे मानव मन संतुष्ट नहीं हो सकता। उसे तो सदा किसी संपूर्ण भावात्मक स्वीकृतिकी खोजमें लगे रहना होगा, जिसे वह किसी ज्योतिर्मय संगतिके द्वारा ही प्राप्त कर सकता है। परंतु इस संगतिको प्राप्त करनेके लिये उसे उन अवस्थाओंको पार करना होगा जिन्हें हमारी अंतर चेतना हमपर लादती रहती है और, चाहे अन्न (जडतत्व) की ही तरह प्राण और मनका बाह्य विश्लेषण करके हो या आंतर समन्वय और प्रकाशके द्वारा, उसे अंतिम ऐक्यकी शांतिमें पहुंचना होगा; और इस कामको करना होगा व्यंजनात्मक बहुत्वकी क्रियाशक्तिको अस्वीकार किये बिना ही। इस प्रकारकी पूर्ण और उदार स्वीकृतिमें ही जीवनके इन बहुविध और बाहरसे परस्पर विरोधी दीखनेवाले तत्वोंका सामंजस्य होगा और जो अनेकविध परस्पर-विरोधी शक्तियां हमारे विचार और जीवनपर शासन करती हैं उन्हें वह केंद्रिक सत्य प्राप्त होगा जिसका प्रतीक होकर वे यहां हैं और जिसको वे अनेक प्रकारसे यहां सिद्ध करती हैं। केवल तभी हमारी विचार-बुद्धि सच्चे केंद्रको प्राप्त होकर, इधर-उधर भटकना बंद करके उपनिषदोंके ब्रह्मके समान कर्म कर सकेगी जो अपने क्रीडा-कालमें तथा विश्वव्यापी भ्रमण-कालमें भी स्थिर और अविचल रहता है तथा हमारा जीवन अपने लक्ष्यसे अवगत होकर प्रशांत और स्थिर हर्ष एवं प्रकाश और साथ ही छन्दोबद्ध बहुधारा शक्तिके साथ इस लक्ष्यको सिद्ध करनेमें लगा रहेगा।

परंतु एक बार जब यह छन्दोभंग हो गया है तब यह आवश्यक और उपयोगी है कि मनुष्य इन दो अत्यंत विपरीत तत्वोंके चरम भावोंमें प्रवेश करें और इनको अलग-अलग जांच लें। यह मार्ग मनके लिये स्वाभाविक है अपनी खोयी हुई भावात्मक संगतिमें अधिक पूर्णताके साथ वापस लौट आनेके लिये। तब यह संभव है कि रास्तेमें जो सीढियां पडती हैं वहां वह कुछ विश्राम लेनेका उद्योग करे और यह अनुभव करे कि संसारकी सभी वस्तुएं किसी मौलिक प्राण-शक्ति या संवेदन या भावनाओंके ही रूप हैं, किंतु इस प्रकारके अनन्य समाधान सदा ही अवास्तविकताके वातावरणके लिये रहते हैं। इन समाधानोंसे तर्क बुद्धि भले ही थोडी देरके लिये संतुष्ट हो जाय क्योंकि वह केवल भावनाओंके जगतमें ही विचरती है, किंतु मनका जो वास्तविकता संबंधी बोध है उसको ये संतुष्ट नहीं कर सकते क्योंकि मन इस बातको जानता है कि उसके पीछे कोई ऐसी चीज है जो भावना तो नहीं है; दूसरी ओर, वह यह भी जानता है कि उसके अपने भीतर ही कोई ऐसी वस्तु है जो प्राण-वायुसे बहुत बडी है। या तो आत्मा या फिर अन्न (जडतत्व) ही उसे कुछ कालके लिये अंतिम सद्वस्तुसे प्रतीत हो सकते हैं; बीचके कोई भी तत्व उसे अंतिम सद्वस्तुकी इतनी प्रतीति नहीं कराते। इसलिये समग्र सत्तामें सफलतापूर्वक वापस लौटनेसे पूर्व मनको इन दो चरम तत्वोंके पास हो आना होगा, क्योंकि, मन सृष्टिके केवल अंशोंका ही स्पष्ट अनुभव कर सकता है और वाणी तभी किसी स्पष्टतातक पहुंच सकती है जब वह वस्तुओंको सावधानीके साथ विभक्त और सीमित कर ले- ऐसे मन और वाणीसे युक्त बुद्धि अपने सामने मूलतत्वोंके अनेकत्वको देखती हुई, स्वभावतः ही इस बातके लिये विवश होती है कि वह इन सबको किसी एकके रूपके अंदर लाकर एकत्वकी खोज करे। और इस एकत्वको सिद्ध करनेके लिये वह दूसरे-दूसरे तत्वोंसे छुटकारा पानेका वास्तविक उद्योग करती है। इस अनन्य प्रक्रियाके बिना बुद्धि यदि इनकी एकताके वास्तविक मूलको देखनेका प्रयास करे तो, या तो उसे अपनी ही सीमाका अतिक्रमण करना पडेगा या फिर समस्त सृष्टिकी प्रदक्षिणा करनी पडेगी और अंतमें वह यह पायेगी कि सब कुछ समान रूपसे उस तत्में समा जाते हैं। जिसका कोई वर्णन नहीं, कोई निर्वचन नहीं और फिर भी जो केवल सत्य ही नहीं बल्कि प्राप्य भी है। हम किसी भी मार्गसे यात्रा क्यों न करें, अंतमें पहुंचेंगे उसी तत्में और यदि हम उससे बचना चाहें तो हम अपनी यात्राको पूर्ण करनेसे इनकार करके ही बच सकते हैं।

इसलिये, यह एक शुभ लक्षण है कि बहुतसी परीक्षाओं और मौलिक समाधानोंके बाद आज हम अपनेको इन दो आत्यंतिक भावोंके सामने पायें केवल जो ही अनुभवकी कठोर जांचमें इतने दिनोंतक टिके रहे हैं एवं इस अनुभवके अंतमें ये दोनों आत्यंतिक भाव एक ऐसे परिणामको पहुंचे जिसे मानवजातिका सहजबोध, जो कि सत्यके विश्वव्यापी आत्माका छिपा हुआ न्यायाधीश, प्रहरी एवं प्रतिनिधि है उचित या संतोषजनक माननेसे इनकार करे। यूरोपमें जडवादीके निषेधने और भारतमें संन्यासीके इन्कारने इस बातकी चेष्टा की है कि उन्हींके मतवाद एक मात्र सत्य माने जायं और वे ही जीवनके लक्ष्य बन जायं। परिणाम यह हुआ कि भारतमें, एक ओर यदि आध्यात्मिक सभी या कुछ-रत्नोंका एक बड़ा भारी ढेर लग गया तो दूसरी ओर जीवनके मामलेमें एक बड़ा भारी दिवाला ही रहा; और यूरोपमें, एक ओर यदि इस जगतकी संपत्तियों और शक्तियोंको पूरी तरहसे हस्तगत करके उनपर विजयात्मक प्रभुत्व स्थापित हुआ तो दूसरी ओर आध्यात्मिक वस्तुओंके संबंधमें उतना ही दिवाला रहा। न बुद्धिको ही, जिसने समस्त समस्याओंका हल अन्न (जडतत्व) के अंदर लाकर करना चाहा था, इस विषयमें जो उत्तर मिला उससे संतोष हुआ है।

इसलिये अब वह समय आया है और संसारका झुकाव इस ओर बढ रहा है कि विचार और अन्तर-चक्षु अनुभूति दोनोंमें ही एक नवीन और व्यापक भावात्मक स्वीकृतिकी प्रतिष्ठा हो, और उसके फलस्वरूप, जैसे व्यष्टिके लिये वैसे ही जातिके लिये, सर्वांग सम्पूर्ण मानव-जीवनकी एक नवीन और समृद्ध सिद्धि हो।

आत्मा और अन्न (जडतत्व) यद्यपि एक अज्ञेय के ही प्रतिनिधि हैं फिर भी उस अज्ञेयके साथ इनके सम्बन्धोंमें एक अन्तर है, और इस अन्तरसे एक और भेद यह पैदा होता है कि अन्नमय तथा आध्यात्मिक नकारोंका प्रभाव एक सरीखा नहीं पडता। जडवादीका निषेध यद्यपि अधिक हठीला और सद्यः सफल होता है, अधिकांश मनुष्योंको झटसे जंच जाता है, फिर भी यह सन्यासीके आकर्षक पर भीषण प्रत्याख्यानकी अपेक्षा अल्प स्थायी और शेषमें कम भावोत्पादक होता है। क्योंकि अपने रोगकी दवा यह अपने अन्दर ही लिये रहता है। इसका सबसे बलवान तत्व है अज्ञेयवाद, जो समस्त अभिव्यक्तिके पीछे किसी अज्ञेयके अस्तित्वको स्वीकार कर उस अज्ञेयकी सीमाओंको फैलाते-फैलाते इतनी बढा देता है कि जो सब वस्तुएं मात्र अज्ञात हैं, अज्ञेय नहीं उन्हें भी उसी अज्ञेयकी परीधिमें ले आता है। अपने सिद्धान्तके प्रमाणस्वरूप इसकी प्राथमिक युक्ति यह है कि ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये भौतिक इन्द्रियां ही हमारे एक मात्र साधन हैं, इसलिये बुद्धि, अपनी अत्यन्त विस्तृत और प्रचण्ड उडानमें भी, भौतिक इन्द्रियोंके क्षेत्रके परे नहीं जा सकती; उसे सदा केवल उन्हीं तथ्योंसे सरोकार रखना होगा जिन्हें भौतिक इन्द्रियां उसके सामने जुटाती या सुझाती रहती हैं; और स्वयं इन सुझावोंको सदा उनकी मूल इन्द्रियोंके साथ बांध रखना होगा, हम इनके परे नहीं जा सकते; इनसे हम एक ऐसे पुलका काम नहीं ले सकते जो हमें उस पार एक ऐसे क्षेत्रमें पहुंचा दे जहां अधिक शक्तिशाली और अल्पसीमित वृत्तियां क्रियाशील होने लगती हैं तथा जहां एक दूसरे प्रकारका अन्वेषण आरम्भ हो जाता है।

इस प्रकारकी मनमानी युक्ति अपनी न्यूनताकी आप ही घोषणा करती है। यह युक्ति तभी टिक सकती है जब कि प्रमाण और अनुभूतिके उस विशाल क्षेत्रकी अवहेलना की जाय या उसे कुछ-का-कुछ कहकर उडा दिया जाय जो इसका प्रतिवाद करता है, उन महान और उपयोगी वृत्तियोंको अस्वीकार किया जाय, उनकी निंदा की जाय जो समस्त मानव प्राणियोंमें सचेतन या अस्पष्ट रूपसे क्रियाशील हैं अथवा यदि इतना नहीं तो केवल अप्रकट रूपसे ही विद्यमान हैं, और अन्न (जडतत्व) और उसकी गतियोंसे सम्बद्ध होकर अतिभौतिक घटना सम्बन्धी जो कुछ यहां प्रकट है तथा अज्ञानमय शक्तियोंकी अनुजीवी कर्मण्यताके रूपमें जो कुछ बोधगम्य होता है उसे छोडकर शेष जो कुछ है उसका अनुसन्धान करनेसे इनकार किया जाय। ज्योंही हम मन और विज्ञानकी अपनी क्रियाओंके विषयमें अनुसन्धान करना प्रारम्भ करते हैं और आरम्भसे ही हमने जो यह निश्चय कर लिया होता है कि विज्ञान और मन अन्न (जडतत्व) के ही अनुजीवी तत्व हैं, उस निश्चयको एक किनारे रख देते हैं, त्योंही हम घटनाओंके एक इतने बडे समूहके सम्पर्कमें आ जाते हैं जो जडवादियोंके सूत्रकी कठिन पकडके, उनके बन्धनकारी मतवादके सर्वथा बाहर

है। और जिस क्षण हम यह स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि हमारा वर्धमान अनुभव हमें ऐसा करनेके लिये विवश करता है, कि इस विश्वब्रह्माण्डमें ऐसी ज्ञेय वस्तुएं हैं जो इन्द्रियोंकी पहुंचके परे हैं तथा मनुष्यमें ऐसी शक्तियां और वृत्तियां हैं जो जिन अन्नमय उपकरणोंके द्वारा वे इन्द्रियगम्य जगत्के साथ--जो, कि हमारी सच्ची और सम्पूर्ण सत्ताका कोषमात्र है-अपना सम्पर्क बनाये रखती हैं उन उपकरणोंसे नियन्त्रित नहीं होतीं, बल्कि उन्हींका नियन्त्रण करती हैं, उसी क्षण जडवाद-मूलक अज्ञेयवाद लुप्त हो जाता है। हम किसी विशालतरसिद्धांत और किसी चिर-प्रगतिशील अन्वेषणके लिये उद्यत हो जाते हैं।

किन्तु पहले यह अच्छा होगा कि मानव-जाति तर्कवाद-मूलक जडवादके जिस अतिसंक्षिप्त कालसे होकर गुजर रही है उस कालकी प्रकाण्ड और अनिवार्य उपयोगिताको हम स्वीकार करें। क्योंकि प्रमाण और अनुभवके जिस विशाल क्षेत्रका द्वार आज हमारे सामने उद्घाटित होने लगा है, उसमें निरापद रूपसे तभी प्रवेश किया जा सकेगा जब कि किसी विशुद्ध तपस्याके लिये बुद्धिकी अतिकठोर शिक्षा-दीक्षा हो चुकी हो; अपरिपक्व मन इसे अपने अधिकारमें करले तो यह अत्यन्त भयानक विकृतियों एवं भ्रामक कल्पनाओंकी हां-में-हां मिलाने लगती है और यथार्थमें भूतकालमें इसने सत्यके सच्चे केन्द्रपर विकार पैदा करनेवाले कुसंस्कारों और अयुक्तिकर मतवादोंका इतना मोटा लेप चढा दिया कि सत्य ज्ञानकी अन्य कोई भी प्रगति असम्भव हो गई। परिणाम यह हुआ कि कुछ कालके लिये सत्यके छद्मवेशके साथ-साथ सत्यका भी बहिष्कार करनेकी आवश्यकता इसलिये अनुभव हुई कि कैसी नवीन यात्रा और सुनिश्चित प्रगतिका मार्ग परिष्कृत हो जाय। जडवादकी युक्तिवादमूलक प्रवृत्तिने मानव-जातिकी यह बडी भारी सेवा की है।

अतीन्द्रिय वृत्तियां अन्न (जडतत्व) में फंसी हुई हैं, भौतिक शरीरके अन्दर कार्य करनेके लिये प्रेरित हैं, उस एक ही भौतिक रथको टानेनेके कार्यमें जुती हुई हैं जिसे चित्तकी कामनाएं और स्नायवीय प्रेरणायें भी टान रही हैं, और इस कारण वे संमिश्र क्रियाके लिये उपडी हुई होती हैं, वे इस बातके खतरेमें होती हैं कि कहीं वे सत्यको प्रकाश देनेके बदले चित्तभ्रामक विश्रृंखलाको ही रोशनी दिखाने न लग जांय। यह संमिश्र क्रिया विशेष रूपसे तब भयावह होती है जब मनुष्य अशोधित मनों और अशुद्ध इन्द्रियानुभवोंके साथ आध्यात्मिक अनुभूतिके उच्चतर क्षेत्रोंमें जानेकी चेष्टा करते हैं। और चूंकि ये क्षेत्र थोथे बादलों और धुंधलासा प्रकाश देनेवाले कुहासेसे भरे रहते हैं अथवा घोर अन्धकार छाया होता है और उस अन्धकारमें कभी कभी एक तीव्र ज्योति चमक जाती है जो प्रकाश देनेके बदले आंखोंको चौंधिया देनेका काम ही अधिक करती है, इसलिये ऐसे क्षेत्रोंमें वे कौनसे क्षेत्र हैं जहां जानेकी शीघ्रता और दुःसाहस करनेवाले मनुष्य अपने आपको खो न बैठें? अवश्य ही प्रकृति अपने उन्नति साधनके लिये जिस मार्गसे होकर गुजरती है उसमें इस प्रकारकी दुःसाहसिक क्रिया आवश्यक हो जाती है-क्योंकि प्रकृति कर्म करती हुई उस कार्यसे स्वयं अपना विनोद करती रहती है-फिर भी बुद्धिके लिये तो यह दुःसाहस शीघ्रतासे भरा और असामयिक ही होता है।

इसलिये यह आवश्यक है कि प्रगतिशील ज्ञान किसी स्पष्ट, विशुद्ध और अनुशासित बुद्धिको अपना आधार बनाकर आगे बढे। यह भी आवश्यक है कि कभी-कभी वह इन्द्रियग्राह्य तथ्यके नियन्त्रणमें, भौतिक जगतकी स्थूल वास्तविकतामें कुछ देरके लिये लौटकर अपनी भूलोंको सुधार ले। पृथिवीकी सन्तानके लिये पृथिवीका स्पर्श सदा ही वीर्यवर्धक होता है, तब भी जब कि वह किसी अति भौतिक ज्ञानकी खोज कर रही हो। इतना ही नहीं, बल्कि यहां तक कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण अतीन्द्रिय जगत पर वास्तविक प्रभुत्वको तभी प्राप्त किया जा सकता है— केवल उसके शिखरपर तो हम सदा ही पहुंच सकते हैं— जब कि हम अपने पैरोंको भौतिक जगतमें दृढतापूर्वक जमाये रहें। इस विश्वब्रह्माण्डमें अभिव्यक्त होनेवाले आत्माको उपनिषद जब भी रूप देते हैं, तब वे उसके विषयमें यों कहते हैं कि "पृथिवी उसकी पादभूमि है।*"

---

* "पद्भ्यां पृथिवी ..."। मुण्डक उपनिषद २-१-४

"पृथिवी पाजस्यम ...।" बृहदारण्यक उपनिषद १-१-१

और निश्चय ही यह एक तथ्य है कि हम अपने भौतिक जगत् विषयक ज्ञानको जितना ही अधिक फैलावेंगे, उसे जितना ही सुनिश्चित बनावेंगे, उच्चतर ज्ञानकी प्रतिष्ठाके लिये— केवल उच्चतर ही क्यों बल्कि उच्चतम ज्ञानकी यहां तक कि ब्रह्मविद्याकी प्रतिष्ठाके लिये भी — हमारी नींव उतनी ही अधिक विशाल उतनी ही अधिक सुनिश्चित होती चली जायगी।

इसलिये मानव-ज्ञानके जडवादमूलक कालसे निष्क्रमण करते समय हमें इस बातसे सावधान रहना चाहिये कि जो कुछ हम पीछे छोड रहे हैं उसकी हम झटसे बुराई करने न लग जांय और जब तक हम इस कालके लाभोंके स्थानको ग्रहण करनेके लिये उन अनुभवों और शक्तियोंका आवाहन न कर सकें जो अच्छी तरहसे हमारे हस्तामलक हो चुकी हों और जो निरापद हों, तब तक इस कालके लाभोंके तिलमात्रसे अंशको भी कहीं हम फेंक न दें। अनीश्वरवादने भगवान्‌का जो कुछ कार्य किया है, हमें तो उसे सम्मान और आश्चर्यके साथ देखना होगा तथा अज्ञेयवादने ज्ञानके अवधि विस्तारकी तैयारीके रूपमें उसकी जो सेवायें की हैं उनकी सराहना ही करनी होगी। हमारे इस जगत्‌में भ्रांति सदा ही सत्यकी सेविका और पथ खोजनेवाली है। क्योंकि भ्रान्ति एक अर्धसत्य ही है, जो अपनी सीमाओंके कारण ठोकर खाता रहता है, बहुधा यह सत्य ही होता है जो अपने लक्ष्यतक अलक्षित रूपसे पहुंचनेके लिये एक छद्मवेश धारण करता है। क्या ही अच्छा होता यदि सदा ऐसा ही होता जैसा कि इस महान् कालमें हुआ है, जिसे हम पीछे छोड रहे हैं, कि यह एक श्रद्धामयी सेविका, गम्भीर तपस्विनी, सचेत अनुगामिनी, निर्दोष, अपनी सीमाओंके भीतर तथा तेजोमयी, एक अर्ध सत्य बनी रहती न कि एक असावधान तथा प्रगल्भ पथभ्रष्टता।

समस्त ज्ञानका अन्तिम सत्य किसी प्रकारका अज्ञेयवाद ही है। क्योंकि किसी भी मार्गकी तह तक जानेपर अन्तमें यह विश्व ब्रह्माण्ड उस अज्ञेय सद्‌वस्तुका प्रतीक या प्रतिभास प्रतीत होता है, जो तत्वोंकी विभिन्न श्रेणियोंमें अपने आपको यहां रूपान्तरित करता है जैसे कि भौतिक तत्व प्राणमय और संवेदनशील तत्व, बौद्धिक भावनात्मक और आध्यात्मिक तत्व। जितना ही वह अज्ञेय हमारे लिये वास्तव होता जाता है उतना ही यह दीखने लगता है कि वह निर्वचनात्मक चिन्तन और रचनात्मक उक्तिसे परे है। "न वहां वाणीकी गति है न मनकी" +। फिर भी जिस प्रकार मायावादियोंकी तरह प्रातिभासिक जगत्‌की अवास्तविकताको अतिरंजित करना सम्भव है, उसी प्रकार अज्ञेयकी अज्ञेयताको भी अतिरंजित किया जा सकता है। हम जब उसे अज्ञेय कहते हैं तो इस शब्दसे हमारा वास्तविक अभिप्राय होता है कि वह विचार और वाणीकी पहुंचके परे है, क्योंकि ये ऐसे उपकरण हैं जो सदा भेदभावके भानके आधार पर आगे बढते हैं और जो निर्वचनकी सीमाके अन्दर ही अपने आपको व्यक्त करते हैं; लेकिन विचारके लिये यदि वह अज्ञेय है, तो चेतनाके परम प्रयत्नके द्वारा वह प्राप्य है। एक तरह का ज्ञान ऐसा भी है जो उस तत्‌के साथ एकात्मभूत है और इस ज्ञानके द्वारा उस तत्‌को, किसी अर्थमें जाना जा सकता है। अवश्य ही, इस ज्ञानको विचार और वाणीके द्वारा सफलतापूर्वक प्रकट नहीं किया जा सकता, किन्तु हम जब उसे प्राप्त कर लेते हैं तो हमारी जागतिक चेतनाके प्रतीकोंमें हमारे लिये उस तत्‌का एक नवीन मूल्यांकन हो जाता है, केवल एकमें ही नहीं बल्कि प्रतीकोंके सारे क्षेत्रमें ही और इसका यह परिणाम होता है कि हमारी आन्तर सत्तामें, और फिर इस आन्तर सत्ताके द्वारा हमारे बाह्य जीवनमें एक आमूल परिवर्तन हो जाता है। इसके अतिरिक्त, एक प्रकारका ज्ञान वह है जिसके द्वारा वह तत् जागतिक जीवनके इन समस्त नाम रूपोंमें अपने आपको प्रकट करता है, जो जीवन सामान्य बुद्धिकी दृष्टिमें उस तत्‌को केवल छिपानेवाला ही है। जडवादमूलक सूत्रकी सीमाओंका अतिक्रमण कर तथा प्राण, मन और विज्ञानकी विशिष्ट घटनाओंका पर्यालोचन कर— ये तत्व जिन अनुजीवी गतियोंके द्वारा अन्न (जडतत्व) के साथ अपना सम्बन्ध जोडते हैं केवल उन्हींका पर्यालोचन करके नहीं— हम इस उच्चतर ज्ञान प्रक्रियाको प्राप्त कर सकते हैं। अवश्य ही यह भी अभी उच्चतम ज्ञान प्रक्रिया नहीं है।

+ "न तत्र ... वागगच्छति नो मनः ..." केन उपनिषद् १-३

अज्ञात अज्ञेय नहीं है ×। इसकी कोई आवश्यकता नहीं कि वह हमारे लिये अज्ञात ही बना रहे, हां, यदि हम अज्ञानको पसन्द करें या अपनी प्राथमिक सीमाओंके अन्दर ही बने रहना चाहें तो दूसरी बात है। कारण, जो अज्ञेय नहीं है ऐसी सभी वस्तुओंके लिये, विश्वकी सभी वस्तुओंके लिये संसारमें ऐसी सातुल्य वृत्तियां हैं, जो उन वस्तुओंसे अवगत हो सकती हैं और मनुष्यमें, जो स्वयं एक छोटासा विश्व ही है, ये वृत्तियां सदा वर्तमान रहती हैं और उनके एक विशिष्ट अवस्थाको प्राप्त होनेपर, इनका उसमें विकास हो सकता है। हम इनका विकास चाहे न करें, जहां कहीं इनका आंशिक विकास हो चुका हो वहां इनकी अवहेलना करें और इन्हें क्षीण कर डालें। परन्तु, मूलतः, समस्त सम्भाव्य ज्ञान वह ज्ञान है जो मानव-जातिकी शक्तिके अन्तर्गत है। और चूंकि आत्म-साक्षात्कारकी ओर आगे बढनेके लिये मनुष्यमें प्रकृतिकी एक अविच्छेद्य प्रेरणा होती रहती है इसलिये हमारी क्षमताओंकी कर्मधाराको किसी निर्धारित सीमाके अन्दर बांध रखनेका बुद्धिका जो प्रयास है वह सदा नहीं टिक सकता। जब हमने अन्न (जडतत्व) को प्रमाणित कर दिया होता है और उसकी गूढ क्षमताओंको अनुभव कर लिया होता है, तो वही ज्ञान जो उस तात्कालिक परिच्छिन्नतामें सुविधा बोध करता था अब वैदिक निदः + लोगोंकी तरह पुकार उठता है कि " आगे बढो, दूसरे क्षेत्रोंमें भी प्रगति करो *।"

यदि आधुनिक जडवाद स्थूल भौतिक जीवनके प्रति एक बुद्धि विहीन मूक सम्मति ही होता तो हमारी प्रगति एक अनिश्चित कालके लिये रूक जा सकती थी। परन्तु ज्ञानका अन्वेषण ही जडवादका प्राण होनेके कारण, वह यह नहीं कह सकेगा कि यह प्रगति यहीं रोक दी जाय; जैसे ही वह इन्द्रियलब्ध ज्ञान और उस ज्ञानसे उत्पन्न तर्ककी चरम सीमापर पहुंचेगा वैसे ही उसका अपना वेग ही उसे इस सीमाके पार ले जायगा और जिस वेग और निश्चयके साथ उसने दृश्यमान विश्वका आलिंगन किया है वह उसके उत्साह और साफल्यका एक नमूना है और हम आशा करते हैं कि एक बार जहां उसने इस सीमाका अतिक्रमण कर आगे पग बढाया कि इंद्रियलब्ध ज्ञानके परे जो ज्ञान है उसपर प्रभुत्व पानेके लिये भी वह इसी उत्साह और साफल्यको फिरसे दोहरायगा। हम अभीसे उनके धुंधलेसे आरम्भोंमें उस प्रगतिको देखने लगे हैं।

केवल उस एक अन्तिम भावनामें ही नहीं प्रत्युत उसके साधारण परिणामोंकी जो महान धारा निकली है उसमें भी, ज्ञानका अनुसरण चाहे किसी मार्गसे किया जाय पर अन्तमें यही दिखाई देगा कि ज्ञानकी रुचि एक हो जानेकी है। वेदान्तने, मूल वेदान्तने, न कि दार्शनिक सम्प्रदायोंके वेदान्तने, यों कहें कि उपनिषदोंके वेदान्तने जिन भावनाओंको सर्वथा भिन्न पद्धतिके द्वारा प्राप्त किया उन भावनाओंकी, यहां तक कि उनके सातुल्य भाषा-सूत्रोंकी भी आधुनिक सायंसने अन्न (जडतत्व) के क्षेत्रमें जिस सीमा-तक पुष्टि की है उससे बढकर विलक्षण और मार्केकी बात कोई और नहीं हो सकती। और, दूसरी ओर, इनका पूर्ण मर्म, इनके अन्दर जो बहुमूल्य धनागार भरा पडा है बहुधा वह केवल तभी प्रकट होता है जब इन्हें आधुनिक सायंसके आविष्कारोंके नवीन प्रकाशमें देखा जाय- उदाहरणके लिये उस वेदान्तिक वर्णनको ले लीजिये जिसमें यह कहा गया है कि संसारकी सभी चीजें एक ही बीजसे हैं जिसे विराट शक्ति विविध रूपोंमें कर देती है +। विशेष महत्वपूर्ण बात सायंसकी वह प्रवृत्ति है जो उस अद्वैतवादकी ओर बढ रही है जिसमें बहुत्वसे कोई विरोध नहीं है, जो उस वैदिकभावनाकी ओर अग्रसर हो रही है जिसमें एक मूलतत्वके अनेक भूतभाव माने गये हैं। यदि अन्न (जडतत्व) और शक्तिके द्वैत रूपपर भी बल दिया जाय तो भी यह अद्वैतवादको कोई वास्तविक बाधा नहीं पहुंचाता। कारण, यह तो स्पष्ट ही है कि मूल

× " अन्य देव तद्विदितादथो अविदितादधि। (अन्य है वह ज्ञातसे, और अज्ञातसे भी वह परे है)" केन उपनिषद् १. ३

+ रोक रखने वाले।

* " निरन्यनश्चिदारत। " ऋग्वेद १.४.२

+ " एकं बीजं बहुधा यः करोति। " श्वेताश्वतरोपनिषद् ६-१२

अन्न (जडतत्व) वह वस्तु है जो इन्द्रियगम्य नहीं है तथा सांख्योंके प्रधानकी तरह वह केवल द्रव्यका एक भावनामय रूप ही है; और वास्तवमें अब हम निर्णयकी इस अवस्थाको अधिकाधिक प्राप्त होते जा रहे हैं जहां विचारके मनमाने भेदभावसे ही द्रव्यका रूप शक्तिके रूपसे पृथक किया जा सकता है।

अन्न (जडतत्व) अन्तमें किसी अज्ञात शक्तिके रूपायनके समान प्रकट होता है। प्राण भी, अभीतक रहस्योंका वह समुद्र; जिसका अभीतक थाह नहीं मिला है, एक ऐसी अस्पष्ट संवेदन शक्तिकी तरह प्रकट होता है जो अन्नमय रूपायनमें बन्दी है; और जब भेदकारी वह अज्ञान दूर हो जाता है जो हमें प्राण और अन्नके बीच किसी खाईका भान कराता है, तब यह मानना कठिन हो जाता है कि मन, प्राण और अन्न त्रिविध रूपसे संगठित—और यही है वैदिक ऋषियोंका त्रिविध जगत्—किसी एक ही शक्तिके अतिरिक्त कुछ और भी प्रतीत होंगे। और तब यह धारणा भी नहीं टिक सकेगी कि मनकी जननी कोई जड भौतिक शक्ति है। जो शक्ति जगत्‌की सृष्टि करती है वह संकल्प शक्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकती तथा संकल्प शक्ति केवल चित् शक्ति है जो किसी कर्म और उसके परिणामके प्रति अपने आपको नियुक्त करती है।

यह कर्म और परिणाम क्या है? यदि यह चैतन्यका अपने सृष्ट किये हुए जगत्‌में कतिपय महती संभावनाओंको कार्यमें परिणत करनेके लिये आकारमें स्वयं आवर्तित (अनुप्रविष्ट) हो जाना और फिर आकारों (रूपों) में से निवर्तित होना नहीं है तो और क्या है? एवं मनुष्यमें चैतन्यकी इच्छा क्या है? यदि यह अनन्त जीवन, असीम ज्ञान और अबाध शक्तिके लिये उसका एक संकल्प नहीं है तो और क्या है! स्वयं सायंस भी मृत्यु पर विजय प्राप्त करनेका स्वप्न देखने लगा है, ज्ञानके लिये कभी न बुझने वाली प्यास उसमें दिखाई देती है, वह मानव-जातिके लिये पार्थिव सर्व शक्तिमत्ता जैसी कोई वस्तु गढनेमें लगा हुआ है। उसकी कृतियोंमें देश और काल संकुचित होते-होते अदृश्य होने लगे हैं, एवं वह सैकडों प्रकारसे इस बातकी चेष्टा कर रहा है कि वह मनुष्यको परिस्थितिका स्वामी बना दे तथा इस प्रकार कारण-वादकी बेडियाँ ढीली हो जांय। सीमाकी, असम्भवताकी भावना अब फिकी पडती जा रही है और उसके स्थानमें यह मालूम पडने लगा है कि मनुष्य जिस बातके लिये सदा संकल्प करता है, अन्तमें वह उसे करनेमें सफल होता ही है; कारण जातिगत चेतना शेषमें उसे पूरा करनेका साधन जुटा लेती है। यह जो सर्व शक्तिमत्ता है वह व्यष्टिके अन्दर प्रकट नहीं होती बल्कि मानव-जातिकी उस समष्टिगत संकल्प शक्तिमें प्रकट होती है जो व्यक्तिको अपना साधन बनाकर अपने आपको चरितार्थ करती है। और फिर जब हम और अधिक गहराईमें जाकर देखते हैं तो हमें यह दिखाई देता है कि यह कोई समष्टिकी सचेतन संकल्प शक्ति नहीं होती, प्रत्युत यह तो वे परमचेतन महाशक्ति होती हैं जो केन्द्र और साधनके रूपमें व्यष्टिका और परिस्थिति और क्षेत्रके रूपमें समष्टिका उपयोग करती हैं। और ये महाशक्ति क्या हैं? ये ही नरमें नारायण, ये ही अनन्त व्यक्तित्व, बहुत्वमय एकत्व, सर्वज्ञा, सर्वशक्तिमती सत्ता जो कर्मोंके केन्द्रस्वरूप अहंकारके साथ और जाति, अर्थात् सामूहिक नारायण, विश्व मानव स्वरूप सांचे और परिधि के साथ नरको अपनी प्रतिमामें गढकर उसके अन्दर उस ऐक्य, उस सर्वज्ञता, इस सर्वशक्तिमत्ताकी किसी प्रतिमाको प्रस्फुटित करना चाहती हैं जो भगवानके स्वात्म-भाव हैं। "मर्त्य जीवोंमें जो अमर है वही वह ईश्वर है जो हमारी दिव्य शक्तियोंमें रचना करता हुआ शक्तिरूपमें हमारे अन्तःकरणमें प्रतिष्ठित है" +। यही वह विशाल विश्वप्रेरणा है जिसका आधुनिक जगत् अनुगमन कर रहा है; यद्यपि वह अपने लक्ष्यसे भली प्रकार अवगत नहीं है, फिर भी उसकी समस्त कर्मण्यताएं, इसके सारे प्रयास अवचेतन रूपसे इसी प्रेरणाको सफल करनेमें लगे हुए हैं।

परन्तु सदा ही एक सीमा, एक प्रतिबन्ध है—ज्ञानके विस्तारमें अन्नमय (जडतत्वके) क्षेत्रकी सीमा तथा शक्तिकी क्रियामें जडयन्त्रका प्रतिबन्ध। परन्तु यहां भी इसकी आधुनिक प्रवृत्ति किसी स्वतन्त्रतर भविष्यकी द्योतक है। जैसे ही सायंसके ज्ञानके बाहरी पडाव स्थूल और सूक्ष्मको पृथक् करनेवाली सीमाके अधिकाधिक निकट आये हैं

+ यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवोदेवेष्वरतिर्निधायि।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै॥ ऋग्वेद ४. २. १

वैसे ही व्यावहारिक सायंसकी उच्चतम उपलब्धियां भी ऐसी हुई हैं कि उन्होंने बडे-से बडे काम कर दिखानेवाले कल पुर्जोंको सहज करते-करते इतना घटा दिया है कि वे अदृश्यसे होने लगे हैं। बेतारका तार इस बातका बाह्य चिन्ह और बहाना है कि प्रकृति किसी नवीन प्रकाशकी ओर जा रही है। इतना तो हो ही गया है कि भौतिक शक्तिको एक स्थानसे दूसरे स्थानतक ले जानेके लिये बीचमें जिस इन्द्रियग्राह्य स्थूल साधनकी आवश्यकता होती थी वह अब हटा दिया गया है; केवल भेजने और ग्रहण करनेके स्थलपर ही अब ये साधन रखे जाते हैं। अन्तमें भी न रहेंगे; क्योंकि जब अतिभौतिक सत्ताके नियमों और शक्तियोंका आरम्भसे ही उचित रूपसे अध्ययन किया जायगा तो अवश्य ही ऐसे साधन मिल जायंगे जिनके द्वारा मन भौतिक शक्तिको बिना किसी माध्यमके ग्रहण कर उसे उसके गन्तव्य स्थानतक ठीक-ठीक पहुंचा दे सके और एक बार जहां हमने इसको स्वीकार कर लिया कि भविष्यकी विशाल वीथिकाओंके द्वार हमें दिखाई देने लगेंगे।

फिर भी अज्ञतम जगतके निकट ऊपर ही जो जगत् हैं उनका यदि हमें पूर्ण ज्ञान हो जाय, उनपर यदि हमारा पूर्ण प्रभुत्व हो जाय तो भी एक सीमा रहेगी, एक ऐसी सत्ताका ज्ञान शेष रहेगा जो उनके परे है। हमारे बन्धनकी अन्तिम गांठ उस स्थलपर है जहां बाह्यसत्ता अन्तःसत्ता के साथ एकताके गठबन्धनमें जुडती है, वहां अहंकारके यन्त्र इतने सूक्ष्म हो जाते हैं कि उनका अस्तित्व नहीं के बराबर हो जाता है और अन्तमें हमारे कर्मका परिचालन उस एकत्वके द्वारा होता है जो बहुत्वका आलिंगन करता है, उसपर अधिकार रखता है, उस बहुत्वके द्वारा नहीं जो एकत्वके किसी रूपको प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करता है, जैसी कि वर्तमान परिस्थिति है। वहीं है विराट् ज्ञानका कैन्द्रिक सिंहासन, जहांसे वह अपने अतिविशाल राज्यका निरीक्षण करता है। वहीं पर मिलता है हमारा स्वराज्य, साम्राज्य; + वहीं पर मिलती है हमारी सालोक्य मुक्ति × और हमारी साधर्म्यमुक्ति *।

अध्याय ३

दो नकार

(२) संन्यासीका प्रत्याख्यान

सर्वं ह्येतद्ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥
अव्यवहार्यम्, अलक्षणम्, अचिन्त्यम्, प्रपञ्चोपशमम् ॥ माण्डूक्योपनिषद्-श्लोक १, २.

यह सब ही ब्रह्म है; यह आत्मा ब्रह्म है और आत्मा चतुष्पाद है।
अव्यवहार्य, अलक्षण, अचिन्त्य, जिसमें सब कुछ स्थिर है।

और फिर भी कोई सत्ता है जो परे है।

क्योंकि, विश्वचैतन्यके उस पार, हमें प्राप्य, एक परतर चैतन्य है जो केवल अहंकारके ही परे नहीं, बल्कि स्वयं विश्व ब्रह्माण्डके भी परे हैं, और जिसके सहारे यह विश्व वैसे ही खडा दिखाई देता है जैसे किसी अपरिमेय पृष्ठभूमिके सहारे खडा कोई छोटा सा चित्र। वह चेतन सत्ता ही विश्व कर्मण्यताको सहारा देती है- अथवा शायद केवल उसे सहन करती है; जीवनका वह अपनी विशालतामें आलिंगन करती है— अथवा शायद उसे अपनी अनंततासे अलग कर देती है।

+ प्राचीन ऋषियोंके भावात्मक योगका द्विविध लक्ष्य।

× भगवान् के साथ एक ही लोकमें चिन्मय स्थितिके द्वारा मुक्ति।

* भागवत स्वभावको प्राप्त होनेके द्वारा मुक्ति।

यदि जडवादीका उसके अपने दृष्टिकोणसे यह आग्रह करना उचित है कि अन्न (जडतत्व) ही सद्वस्तु है, यह आपेक्षिक जगत् ही वह एकमात्र वस्तु है जिसके सम्बन्धमें हम किसी प्रकार निःसंशय हो सकते हैं और इसके परे जो सत्ता है वह यदि वास्तवमें अस्तित्वविहीन न भी हो तो सर्वथा अज्ञेय है, मनका एक स्वप्न है सद्वस्तुसे अपनेको पृथक् की हुई विचार-बुद्धिकी एक वस्तुविच्छिन्नता मात्र है; तो फिर इस परा सत्ता द्वारा विमुग्ध संन्यासी भी अपने दृष्टिकोणसे इस बातका आग्रह कर सकता है कि सद्वस्तु तो केवल विशुद्ध आत्मा ही है, वही वह एक वस्तु है जो परिवर्तन, जन्म और मृत्युसे मुक्त है और आपेक्षिक जगत् तो मन और इन्द्रियोंकी रचना है, एक स्वप्न है, विशुद्ध और शाश्वत् ज्ञानसे पृथक् हुई मनोवृत्तिकी स्थूलाभिमुखी गति है।

इन दोनों चरम तत्वोंमेंसे किसी एक तत्वके समर्थनमें न्याय और अनुभवका ऐसा कौनसा प्रमाण दिया जा सकता है जिसके उत्तरमें दूसरे तत्वकी ओरसे न्यायका उतना ही सबल प्रमाण और अनुभवका उतना ही पक्का प्रमाण न दिया जा सकता हो ? भौतिक स्थूल इन्द्रियोंके अनुभवके द्वारा प्रमाणित होता है और चूंकि ये इन्द्रियां, जो कुछ भी सूक्ष्म है अथवा जो कुछ स्थूलभूतके रूपमें संगठित नहीं है, उसका स्वयं अनुभव नहीं कर सकतीं, इसलिये हमें ऐसी प्रतीति करा देना चाहती हैं कि अतीन्द्रिय वस्तुएं अवास्तव हैं। हमारे दैहिक अवयवोंकी इस प्रकारकी तुच्छ और ग्राम्य भूलको दार्शनिक युक्तिके क्षेत्रमें ऊपर उठा ले जानेसे उस भूलका मूल्य कुछ बढ नहीं जाता। स्पष्ट ही उनका यह अभियोग निराधार है। अन्नमय जगत्में भी ऐसी वस्तुएं हैं जिनका ज्ञान स्थूल इन्द्रियोंको नहीं हो सकता। फिर भी अतीन्द्रिय वस्तुओंको भ्रम या भ्रान्ति कहकर निषेध करनेका कारण यह है कि स्थूल इन्द्रियां स्थूलरूपसे अनुभवगम्य वस्तुको ही सदा सद्वस्तु मानती है, और यह मानना स्वयं एक भ्रान्ति ही है। यह निषेध जिस बातको प्रमाणित करना चाहता है उसीको आरम्भसे अन्ततक मानकर चलनेके कारण इसमें वह दोष आ जाता है जिसे न्यायमें साध्यसम हेत्वाभास कहा गया है, और इसलिये निष्पक्ष युक्तिमें इसका कोई स्थान नहीं।

केवल इतनी ही बात नहीं कि ऐसी वस्तुएं हैं जो अतीन्द्रिय हैं, बल्कि यदि सत्यकी पहचान प्रमाण और अनुभवोंके द्वारा तनिक भी की जा सकती हो तो यह स्वीकार करना होगा कि ऐसी इन्द्रियां भी हैं जो अतिभौतिक हैं * और केवल इतना ही नहीं कि वे स्थूल इन्द्रियोंके बिना ही भौतिक जगतकी वस्तुओंका बोध कर सकती हैं, बल्कि वे हमें दूसरी दूसरी वस्तुओंके सम्पर्कमें भी ला सकती हैं, उन वस्तुओंके सम्पर्कमें ला सकती हैं जो अतिभौतिक हैं और दूसरे जगतकी हैं- अर्थात् जो उन सचेतन अनुभवोंके संगठनमें अन्तर्भूत हैं जो स्थूलभूतकी अपेक्षा-जिनसे कि हमारे सूर्य और पृथिवियां बनी हुई बोध होती हैं- किसी दूसरे ही तत्वपर निर्भर करते हैं।

विचार-बुद्धिके मूलारम्भसे ही इस सत्यका प्रतिपादन मानव-अनुभव और विश्वासके द्वारा सदा होता आया है, और अब जब कि जड प्राकृतिक जगत्के रहस्योंमें आत्यन्तिक व्यावृत्तिकी आवश्यकता जाती रही है, तो जड वैज्ञानिक अनुसंधानके नवजात रूपोंके द्वारा भी इसकी पुष्टि होने लगी है। इन रूपोंके बढे जाते हुए प्रमाणोंका— दूर-चिन्तन ग्रहण शक्ति (टेलीपैथी) और उसी जातिकी अन्यान्य घटनाओंके नामसे जिनके केवल स्फुट और बाह्य भागकी ही स्थापना हुई है- अब वे ही लोग विरोध कर सकते हैं जिनके मन अतीतके उज्ज्वल कोषके अन्दर बन्द पडे रहना चाहते हों, जिनकी बुद्धि तीव्र होते हुए भी अपने अनुभव और जिज्ञासाके क्षेत्रकी सीमासे सीमित हो या वे जो किसी विगत शताब्दि द्वारा प्रदत्त सूत्रोंकी अविकल पुनरावृत्तिको तथा मृत या मरणासन्न बौद्धिक मतवादोंको सावधानीके साथ सम्हालकर रखनेको ही प्रकाश और युक्ति मानते हैं।

यह ठीक है कि विधिबद्ध अनुसन्धानके द्वारा अतिभौतिक वस्तुओंकी जो झांकी मिली है वह अपूर्ण है और अभीतक उसका सुप्रतिपादन नहीं हुआ है, क्योंकि इस अनुसन्धानमें जिन प्रणालियोंका उपयोग किया गया है वह स्वयं स्थूल व सदोष हैं परन्तु कम-से-कम इस बातका

* सूक्ष्म देहमें रहनेवाली सूक्ष्म इन्द्रियां जो सूक्ष्म दृष्टि और अनुभवके साधन हैं।

पता तो लग ही गया है कि ये पुनराविष्कृत सूक्ष्म इन्द्रियां दैहिक अवयवोंके क्षेत्रके परेके भौतिक तथ्योंके सच्चे साक्षी हैं। और ये साक्षी जब चेतनाके अन्नमय क्षेत्रके परेके अति-भौतिक तथ्योंको साबित कर रहे हैं तब इनको मिथ्या साक्षी कहकर इनका उपहास पूर्वक तिरस्कार करना सर्वथा निरर्थक हो जाता है। सभी प्रमाणोंकी तरह, स्वयं भौतिक इन्द्रियोंके प्रमाणोंकी तरह भी, इनके प्रमाणोंका युक्तिके द्वारा नियन्त्रण, पर्यालोचन और व्यवस्थापन करना होगा, इनका ठीक ठीक उपयोग करना होगा। परन्तु जो पदार्थ किसी सूक्ष्मतर तत्वके अन्दर हैं और जो स्थूल यन्त्रोंकी अपेक्षा किन्हीं सूक्ष्मतर यन्त्रों द्वारा बोधगम्य हैं, उनके विषयमें जो विशाल अनुभव हुए हैं उनके सत्यको अन्तमें वही स्थान देना होगा जो स्थान स्थूल जगतके सत्यको दिया जाता है। इस जगतके परे अन्यान्य जगत हैं, उनका अपना व्यापक छन्द है, अपनी विशाल मार्ग-रेखायें और रचनाएं हैं, अपने स्वतः स्थित विधान, अपनी प्रतापी शक्तियां हैं, ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये योग्य एवं ज्योतिर्मय साधन हैं। ये जगत् हमारे भौतिक जीवन और शरीरपर अपना प्रभाव डालते रहते हैं, अपनी अभिव्यक्तिके साधनोंको यहांपर भी संगठित करते रहते हैं तथा अपने दूतों और साक्षियोंको अपना काम करनेके लिये यहां भेजते रहते हैं।

परन्तु ये नानाविध जगत् हमारे अनुभवके लिये ढांचे भर हैं और इन्द्रियां हमारे अनुभव और सुभीतेके केवल साधन हैं। इनके अन्दर जो वास्तविक तथ्य है वह है चैतन्य, यही वह विश्वव्यापी साक्षी है जिसके लिये यह जगत एक क्षेत्र है और इन्द्रियां हैं यन्त्र। इस साक्षी-चैतन्यसे ये जगत् और इनके विषय अपनी वास्तविकताके लिये प्रार्थना करते हैं; और एक जगतके सम्बन्धमें कहिये या अनेक जगतोंके सम्बन्धमें, इस साक्षी चैतन्य को छोड-कर इनके अस्तित्वके सम्बन्धमें हमारे पास और कोई प्रमाण नहीं है। यह कहा जाता है कि चैतन्य और जगतोंका जो यह सम्बन्ध है वह केवल मानव जातिके संगठन और बाह्य जगतके विषयमें उसकी जो दृष्टि है उसीका कोई अनूठा सम्बन्ध हो, ऐसी बात नहीं है, बल्कि समस्त सृष्टिका स्वभाव ही ऐसा है; सारी गोचर सृष्टि द्रष्टा-चैतन्य और सक्रिय बहिरंगता को लेकर है और साक्षी पुरुषके बिना कर्म सम्भव नहीं, क्योंकि जगत या तो द्रष्टा चैतन्यमें है या उसीके लिये है और इस चैतन्यके बिना इसकी कोई स्वतंत्र-सत्ता नहीं है। इसके उत्तरमें यह कहा जाता है कि अन्न-मय विश्वकी अपनी शाश्वत स्वतःस्थिति है; प्राण और मनके दिखाई देनेके पहले भी यह था और इनके अदृश्य हो जाने के बाद भी, ये अपने क्षणिक प्रयास और परिच्छिन्न विचारों से हमारे सूर्योंके शाश्वत और अचेतन छन्दको क्षुब्ध करना जब बन्द कर देंगे तब भी यह बना रहेगा। यह मतभेद यद्यपि ऊपरसे दार्शनिकग्राही दिखाई देता है फिर भी अत्यन्त व्यवहारिक महत्व रखता है, क्योंकि इस विषयमें मनुष्यका जो मत होगा तदनुसार ही वह जीवनके प्रति अपने सारे दृष्टिकोण का निर्धारण करेगा, तदनुसार ही वह अपनी चेष्टाओंका लक्ष्य बनावेगा, तदनुसार ही वह उस क्षेत्रको चुनेगा जिसमें चारों ओर वह अपनी शक्तियोंके उपयोगको सीमित रखे। क्योंकि इस मतभेदसे स्वयं विश्व-जीवनकी सत्यताका ही प्रश्न उपस्थित होता है कि मानव-जीवनका मूल्य क्या है।

यदि हम जडवादियोंके निर्णय को काफी दूर तक आगे बढा ले जांय तो हमें व्यक्ति और जातिके जीवनमें निरर्थ-कता और अवास्तविकता दिखाई देगी, जिससे, न्यायतः, यह बात पैदा होगी कि हम व्यक्तिभावसे यथाभिरुचि या तो जोतोड परिश्रम कर इस अनित्य जीवनसे जो कुछ उचक ले सकें, उसे लेकर, जैसा कि कहा जाता है, "मौज से रहें" अथवा अनासक्त और निःस्वार्थ होकर अपनेको जाति और व्यक्तिकी सेवामें लगादें, इस बातको अच्छी तरह जानते हुए कि व्यक्ति केवल स्नायवीय मनोवृत्तिकी अलीक कल्पना है और जाति जड (जडतत्व) के किसी नियमित स्नायवीय खिंचाव का कुछ अधिक दिर्नोतक टिका हुआ एक सामूहिक रूप। तब हमें यह मान लेना होगा कि हम अपने कर्म या सांसारिक भोगोंको उस अन्नमय शक्तिके वशीभूत होकर करते या भोगते हैं जो जीवन की क्षणिक मायाके द्वारा अथवा किसी नैतिक लक्ष्य और मानसिक सिद्धिकी महत्तर मायाके द्वारा हमें धोखा देती रहती है। आध्यात्मिक अद्वैतवादकी तरह ही जडवाद का भी मायामें पर्यवसान होता है, वह माया जो है और फिर भी जो नहीं है— है इसलिये कि उसकी अवस्थिति है और वह

हमें विवश करती है, नहीं इसलिये कि वह अपनी क्रियाओंमें घटनात्मक और अनित्य है। दूसरी ओर, यदि हम बाह्य जगत् की असत्यतापर बहुत अधिक जोर दें, तो हम सर्वथा दूसरे ही मार्गसे चलकर, इसी प्रकारके पर उससे भी पैने कुशाग्र निर्णय को प्राप्त होते हैं कि व्यक्तिगत अहंभाव केवल कल्पनाकी वस्तु है, मानव-जीवन असार और अहेतुक है और गोचर जीवनके निरर्थक मायाजालसे भाग कर असत्में अथवा अव्यवहार्य केवल ब्रह्ममें लौट जानाही एकमात्र युक्तिसंगत उपाय है।

फिर भी हमारे सामान्य जीवनके प्रमाणोंके आधारपर इस प्रश्नका समाधान नहीं हो सकता, क्योंकि अनुभवकी कमीके कारण इन प्रमाणोंमें कुछ अभाव सदाही रहता है, और इसलिये इस प्रकार की युक्ति सदा अनिश्चित ही होती है। सामान्यतः न तो हमें व्यष्टि शरीरके जीवनसे अबद्ध विश्व-मानस या अतिमानसका स्पष्ट अनुभव होता है और, दूसरी ओर, न हमें अनुभवकी कोई ऐसी सुदृढ अलंघ्य सीमा ही प्राप्त हुई है जिससे हमारा यह मान लेना उचित ठहराया जा सके कि अन्तरंग आत्मा वास्तवमें ढांचे पर ही निर्भर करता है और न तो वह इस शरीरके बाद रह सकता है न व्यष्टि-शरीर की परीधि से निकलकर विस्तृत ही हो सकता है। इस प्राचीन विवाद का निबटारा तो एक ही प्रकार से हो सकता है कि हम अपनी चेतना के क्षेत्र को विस्तृत करें अथवा अपने ज्ञानके साधनों की आशातीत वृद्धि करें।

हमारी चेतनाका सन्तोषजनक विस्तार तो, अवश्यही, आन्तरिक प्रसारमें होना चाहिये, अर्थात् चेतना व्यष्टि-भावसे निकलकर विश्वभावमें फैल जाय। क्योंकि यदि साक्षी पुरुष है तो वह इस संसारमें जन्मा हुआ शरीरधारी व्यष्टि-मानस तो नहीं है, बल्कि वह तो विराट् चैतन्य है जो विश्व-का आलिंगन किये हुए है और जो समस्त विश्व-कर्ममें अन्तर्व्याप्त बुद्धिके रूपमें प्रकट है और साक्षीरूपसे यह देखता है कि यह जगत या तो उसके अपने सक्रिय जीवन के रूपमें सदा यथार्थ में स्थित है या फिर उसीमें से उत्पन्न होता है और ज्ञानकी अथवा चित् शक्तिकी क्रियाके द्वारा उसीमें लय हो जाता है। संगठित मन नहीं, बल्कि वह जो स्थिर और सनातन है, जो इस सजीव पृथिवी और इस सजीव मानवशरीरका समानरूपसे भर्ता है, मन और इन्द्रियां जिसके परिहार्य यन्त्र हैं- वही वह चैतन्य है जो इस जागतिक जीवन का साक्षी है, ईश्वर है।

ज्ञानको प्राप्त करनेके अधिक नम्य और ग्रहणशील यन्त्रोंकी भांति, मानव-जातिमें विराट-चैतन्य की संभावना को भी आधुनिक मनोविज्ञान अब धीरे-धीरे स्वीकार करने लगा है, किन्तु इस चैतन्यकी महिमा और शक्तिको स्वीकार करके भी, इसकी गणना अभीतक एक मतिभ्रम में ही की जाती है। प्राच्य मनोविज्ञानमें इस विराट्-चैतन्यको एक सत्यके रूपमें और हमारी आन्तरिक प्रगतिके लक्ष्यके रूपमें सदा स्वीकार किया गया है। इस लक्ष्यको प्राप्त करने के मार्गका सारतत्व यह है कि अहंभावने हमपर जो सीमाएं लाद दी हैं उनका हम अतिक्रमण करें तथा समस्त जीवनके अन्दर एवं जो कुछ हमें निर्जीवसा प्रतीत होता है उसके अन्दर भी, निगूढ़रूपसे व्याप्त जो आत्म-ज्ञान है उसके साथ हम अपने को पूर्णरूपसे तादात्म्य करें अथवा कम-से-कम इतना तो करें ही कि उस आत्म-ज्ञानमें हमभी भाग लें।

इस चैतन्यमें प्रवेशकर हम उसीकी तरह, विश्वजीवन को साक्षीकी भांति देखना जारी रख सकते हैं। और चूंकि तब हमारी चेतनाकी सारी अवस्थाओंका, यहांतक कि हमारे इन्द्रियानुभवोंका भी परिवर्तन होना आरम्भ हो जाता है, इसलिये हमें यह विदित होता है कि अन्न (जड तत्व) एक अद्वितीय सत्ता है और शरीर उनके गठनमात्र हैं, जिनके भीतर एक विश्व-जीवन पहले तो एक व्यष्टि शरीर में जाकर अन्यान्य शरीरोंमें रहनेवाली अपनी ही सत्तासे अपने आपको भौतिक रूपमें पृथक् कर लेता है और फिर भौतिक साधनोंके द्वारा अपनी सत्ताके इन असंख्य आकारों के साथ परस्पर सम्बन्ध जोड़ता है। ऐसा ही अनुभव हमें तब मनका होता है, और प्राणकाभी, कि यह सब कुछ वह एक ही जीवन है जो अपने बहुत्वमें भी एक है और जो प्रत्येक क्षेत्रमें उस क्षेत्रकी गतिके अनुकूल साधनोंके द्वारा पहले तो अपनेको पृथक् करता है और फिर एक हो जाता है। और यदि हम चाहें तो अपनी चेतनाको और आगे बढा सकते हैं और परस्पर सम्बन्ध जोड़ने वाली बहुतसी अवस्थाओंमें से गुजर चुकने के पश्चात् विशाल

(अतिमानस) को जान सकते हैं, जिसकी विश्वव्यापी क्रिया ही समस्त निम्नतर कर्मण्यताओं की कुंजी है। इस विश्व-जीवनका तब हम केवल सचेतन ज्ञानही नहीं प्राप्त करते, बल्कि हम संवेदनोंमें इसे ग्रहणकर, इसके भीतर प्रवेशकर, इस चैतन्यके साथ अपने चैतन्यको संयुक्तकर विश्व-जीवनमें रहते हैं। इसमें हम उसी प्रकार सहजभाव से रहते हैं जैसे पहले अहंभावमें रहते थे; हम सक्रिय रहते हैं, जिस अंग रचनाको हम अपना स्वरूप कहते हैं उसकी अपेक्षा अब हम अन्यान्य मन, अन्यान्य प्राण और अन्यान्य शरीरोंके साथ अधिकाधिक सम्पर्कमें आजाते हैं, यहां तक कि उनके साथ हम अधिकाधिक ऐक्यभावमें रहने लगते हैं और हमारी अहंभावापन्न क्षमताके लिये शक्य साधनोंके स्थानपर भगवान्के समीपवर्ती साधनोंका प्रयोगकर हम केवल अपनी नैतिक और मानसिक सत्ताको तथा औरों की आन्तरिक सत्ताको ही प्रभावान्वित नहीं करते, बल्कि इस भौतिक जगत् और इसकी घटनाओंपर भी प्रभाव डालते रहते हैं।

अतएव, यथार्थ है विराट्-चैतन्य उस मनुष्यके लिये जिसको उसका सम्पर्क हो चुका है अथवा जो उसमें निवास करता है; उसके लिये वह भौतिक वस्तुकी वास्तविकतासे भी अधिक वास्तव है। वह अपने आपमें सत्य है, अपने परिणामों और कर्मोंमें सत्य है। और जैसे वह चैतन्य जगत्के लिये— जो उस चैतन्यकी समग्र व्यंजना ही है- सत्य है, यथार्थ है, वास्तव है, वैसे ही यह जगत भी उस चैतन्यके लिये सत्य है, किन्तु किसी स्वतन्त्र अस्तित्वके रूपमें नहीं। क्योंकि जहां विघ्न बाधायें कम हैं ऐसे उच्चतर अनुभवमें हमें यह उपलब्ध होता है कि चैतन्य और सत्ता एक दूसरेसे पृथक् नहीं हैं, बल्कि समस्त सत्ता एक आद्वितीय परम चैतन्य हैं, समस्त चैतन्य आत्मसत्ता है जो अपने आपमें शाश्वत है, अपने कर्मोंमें यथार्थ है, वास्तव है एवं न कोई स्वप्न है न निवर्तन। वस्तुतः जगत इसलिये सत्य है कि यह केवल चैतन्यमें ही स्थित है, क्योंकि इसकी सृष्टि चित् शक्ति करती है जो भागवत सत्ताके साथ एक है। और यह कहना कि आकारको धारण करनेवाली स्वयं ज्योतिर्मयी शक्तिसे पृथक् यह सृष्टि अन्नमय आकारकी रचना है, यह तो वस्तुओंके सत्यका एक विरोध, एक मायाजाल, एक कुस्वप्न, एक असम्भव मिथ्यात्व ही होगा।

किन्तु यह चिन्मय भागवत सत्ता— जो कि अनन्त विज्ञानका सत्य है— विश्वसे कोई बडी वस्तु है और जैसे इस विश्वके सामंजस्योंमें वैसे ही अपनी अव्यंजनात्मक अनन्ततामें, स्वतन्त्र रूपसे रहती है। जगत् इस सत्ताके द्वारा जीता है, यह सत्ता जगत्के द्वारा नहीं जीती। और जैसे हम विश्व-चैतन्यमें प्रवेशकर समस्त विश्व-अस्तित्वके साथ एक हो सकते हैं वैसे ही विश्वातीत चैतन्यमें प्रवेश कर सकते हैं तथा समस्त विश्व-अस्तित्वसे उच्चतर हो सकते हैं। और तब यह प्रश्न उपस्थित होता है, जो पहले भी हमारे सामने आया था कि क्या यह विश्वातीत अवस्था निश्चय ही परित्याग है (जगतको त्यागनेसे ही प्राप्त होती है) ? इस विश्वका परा सत्तासे क्या सम्बन्ध है ?

क्योंकि परा सत्ताके द्वारोंपर अवस्थित है उपनिषदोंमें वर्णित केवल और पूर्ण आत्मा, जो प्रकाशमान है, विशुद्ध है, जगत्का भर्ता है पर इसके कर्मोंमें निष्क्रिय है, जो शक्ति-स्नायुविहीन है, द्वन्द्वदोषरहित है, विभाजन-क्षत-वर्जित, अद्वितीय, तादात्म्य, समस्त कार्य-कारण-सम्बन्ध तथा बहुत्वके प्रतिभाससे मुक्त है- यही है अद्वैत वादियोंका विशुद्ध आत्मा, अक्रिय ब्रह्म, परा शान्ति। और मन जब मध्यवर्ती अवस्थाओंको लांघे बिना अकस्मात् इन द्वारोंसे होकर गुजरता है, तब वहां उसे इस जगत्की असत्यताका भान होता है, उसे यह अनुभव होता है कि एकमात्र सत्य तो यह नीरव शान्ति ही है, और यह अनुभव मानव मनके लिये शक्य अनुभवोंमेंसे एक अत्यन्त बलवान् और प्रत्ययात्मक अनुभव है। यहींसे, इस विशुद्ध आत्माके अनुभवसे या उसके पीछे जो असत् है उसके अनुभवसे इस दूसरे नकार, अर्थात् सन्यासीके इनकार का आरम्भ होता है, जो दूसरी चरम सीमापर जडवादीके नकारके सदृश ही होता है, किन्तु यह अधिक पूर्ण, अधिक निर्णयात्मक होता है और इसका असर उन व्यक्तियों या समष्टियोंके लिये अधिक भयावह होता है जो अरण्य-वासकी ओर ले जानेवाली इसकी सशक्त पुकारको सुनते हैं।

दो सहस्र वर्षोंसे, जबसे बौद्ध धर्मने प्राचीन आर्य जगत्के संतुलनको क्षुब्ध कर दिया है तबसे, अन्न (जडतत्व) के विरुद्ध आत्माके इस विद्रोहका प्रभाव भारतवासियोंके मनोंपर बढता गया है। ऐसी बात नहीं है कि जगतकी अनित्यताका

भाव ही समग्र भारतीय चिन्तनका विषय हो, अन्यान्य दार्शनिक सिद्धान्त हुये हैं, अन्यान्य धार्मिक अभीप्साएं हुई हैं। न ऐसा ही है कि आत्यन्तिक दर्शन शास्त्रोंमें भी आत्मा और अन्न (जड) इन दो चरम तत्वोंमें मेल बैठानेके लिये कोई उद्योग न किया गया हो। पर ये सभी इनकार अर्थात् अस्वीकारकी छायामें वास करते रहे हैं और संन्यासीका वेश ही इन सभीके लिये जीवनका अन्तिम लक्ष्य रहा है। जीवन सम्बन्धी जो सामान्य धारणा थी उसपर बौद्धोंका कर्मवाद छा गया और इसके परिणाम-स्वरूप बन्धन और मुक्तिका विरोध फैल गया—जन्मसे बन्धन और जन्मकी निवृत्तिसे मुक्ति। इसलिये सभी मत एक स्वरसे यह कह रहे हैं कि हमारा स्वर्ग-राज्य इस द्वन्द्व-मय जगतमें नहीं हो सकता, वह तो इस जगतके परे सनातन वृन्दा × वनके आनन्दमें अथवा ब्रह्म ॐ लोकके दिव्यानन्दमें या समस्त अभिव्यक्तिके परे किसी अकथनीय निर्वाणमें+ ही प्राप्त हो सकता है अथवा वहां प्राप्त हो सकता है जहां किसी अवर्णनीय सत्ताके निराकार ऐक्यमें जाकर पृथक् अनुभव लुप्त हो जाता है। और, अनेक शताब्दियोंसे तेजस्वी साक्षी, सन्त और धर्माचार्योंका एक बडा दल, जिनके नाम भारतीयोंके स्मृतिपटपर श्रद्धाके साथ अंकित हैं, तथा जिनका प्रभाव भारतीय कल्पना पर पडता है, सदाही वही एक साक्षी देता रहा है, सदा ही उस एक ही उच्च और दूरकी पुकारको फैलाता रहा है कि– ज्ञानका एक मात्र मार्ग है संन्यास; भौतिक जीवनको स्वीकार करना अज्ञानीका कर्म है, मानव-जन्मका उचित उपयोग जन्मसे छुटकारा पाना है, अतएव आत्माकी पुकार सुनो और अन्न (जडतत्व) से किनारा खींचो।

संन्यासके साथ सहानुभूति न रखनेवाले इस युगके लिये भारतके अतिरिक्त दूसरे सभी देशोंमें उदासी, बैरागी का काल समाप्त हो गया सा या समाप्त होता हुआ सा दिखाई देता है– यह कहना सहज है कि इस प्राचीन जातिकी प्राण शक्तिके ह्रासके कारण ही इस जातिका झुकाव सन्यासकी ओर रहा है, वह जाति जो अपने बोझसे दब गई है, जो मानव जातिकी प्रगतिमें किसी समय बहुत बडा भाग लेकर थक चुकी है और जो मानव-चेष्टा और मानव-ज्ञानके भण्डारमें अनेक प्रकारका दान देते-देते क्लान्त हो चुकी है। परंतु हम देख चुके हैं कि संन्यासीका भाव जीवनके एक सत्यके साथ मेल खाता है, उस चेतन आध्यात्मिक अनुभवकी अवस्थाके साथ मेल खाता है जो हमारी सम्भावनाके एकदम शिखरपर होती है। व्यवहारतः भी, संन्यासका भाव मानव-पूर्णताका एक अपरिहार्य अंग है और उसके पृथक् पक्षका भी तबतक निराकरण नहीं किया जा सकता जबतक जातिने दुराग्रही पशुभावकी आधीनतासे अपनी बुद्धिको और अपने प्राणके अभ्यासोंको मुक्त न कर लिया हो।

वास्तवमें हम किसी उदारतर और पूर्णतर स्वीकृतिकी शोध कर रहे हैं। हम देखते हैं कि भारतीय संन्यासके आदर्शमें वेदांतके "एकमेवाद्वितीयम्" जैसे सूत्रको उसी शास्त्रके उतने ही महत्वपूर्ण सूत्र "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" के साथ मिलाकर नहीं समझा गया है। भगवानकी ओर जानेके लिये ऊर्ध्व-मुखी प्रगाढ अभीप्साका सम्बंध, अपनी अभिव्यक्तिका शाश्वत रूपसे आलिंगन करनेके लिये नीचेकी ओर झुकते हुए भगवान्‌की अवतरण क्रियाके साथ यथेष्ट परिमाणमें नहीं जोडा गया है। आत्माके अंदर भगवानका जो सत्य है उसको जितनी अच्छी तरहसे समझा गया उतनी अच्छी तरहसे 'अन्न (जडतत्व) के अंदर उनका क्या तात्पर्य है, यह नहीं समझा गया है। संन्यासी जिस सद्‌वस्तुकी खोज करते हैं उसको उन्होंने उसके पूर्ण उत्तुंग स्वरूपमें उपर उठकर पाया है, किन्तु

× गोलोक, वैष्णव सम्प्रदायका शाश्वत सौन्दर्य और आनंदका धाम।

ॐ अनिर्देश्य ब्रह्ममें पूर्णरूपसे लय हुए बिना ही अंतरात्माके द्वारा प्राप्य विशुद्ध सत् चित् और आनंदकी सर्वोच्चकी स्थिति।

+ लय, समस्त सत्ताका चाहे न भी, पर उसका लय जिसे हम सत्ता रूपसे जानते हैं; अहंकार, वासना, कामना और अहंभावापन्न कर्म तथा मनोवृत्तिका लय।

प्राचीन वेदान्तियोंने उसको जिस प्रकार उसकी पूर्ण व्यापकता और विशालतामें पाया था, वैसे वे नहीं पा सके हैं। परंतु अपनी पूर्णतर स्वीकृतिमें विशुद्ध आध्यात्मिक आवेगके स्थानको हम गौण नहीं मानेंगे। जैसे हमने यह देख लिया है कि जडवादने भगवानके हेतुको सिद्ध करनेमें कितनी महत्त्वपूर्ण सेवा की है, वैसे ही संन्यासवादने जीवनकी जो उससे भी बडी सेवा की है उसे हमें स्वीकार करना चाहिये। अपने अंतिम सामंजस्यमें जड विज्ञानके सत्यको, उसकी वास्तविक उपयोगिताओंको हम बचाकर रखेंगे, फिर चाहे उसके बहुतेरे, यहां तक कि सभी वर्तमान रूपोंको तोड देना या एक किनारे रख देना ही क्यों न पडे। आर्य जातिके पुराकालीन ज्ञानका स्वरूप आज चाहे कितना ही क्षीण या न्यून क्यों न हो गया हो, पर इसके सत्यांशको हमें और भी अधिक सावधानीके साथ बचाकर रखना होगा।

भारत–वेदना

[रचयिता— श्री. दशरथ श्रोत्रियाचार्य]

अद्य मे लक्ष्यं न प्राप्तं, किन्तु प्राप्तम् ?
इह वदन्ति प्रसन्ननेतारः सरागम्
संगता स्वाधीनता कृत्वा स्वभागम्
किन्तु जानेऽहं स्वरूपं मे समाप्तम् !
अद्य मे … … … … … ?

चिन्तितम्—लब्ध्वा स्वराज्यं शं वरिष्ये।
देववाण्या विश्वनेतृत्वं करिष्ये ॥
आङ्लभाषैमें मनो भिन्नं नितान्तम् !
अद्य मे लक्ष्यं … … … … … ?

राष्ट्रभाषा–पुष्टये मे देववाणी।
कल्पते जानाति सर्वो जनो ज्ञानी।
ताञ्च त्यक्त्वा आङ्लभाषामानमात्तम् !
अद्य मे लक्ष्यं … … … … … ?

खिद्यते हृदयं दशां दृष्ट्वा स्वकीयाम्
पद्धतिं गच्छति न लोकः संस्कृतीयाम्
तेन मे स्वान्तं न सम्प्रति हन्त ! शान्तम् !
अद्य मे लक्ष्यं … … … … … ?

पुराकथयम् सर्वदेशजने सगर्वम्
सर्व आगत्यात्र शिक्षन्तां स्ववृत्तम्
किन्त्वहं गच्छामि बत ! दुःखस्य नान्तम्
अद्य मे लक्ष्यं … … … … … ?

जाग्रतोत्तिष्ठत अरे ओ भारतीयाः।
धारणीया संस्कृतिर्बुद्धिर्मदीया।
दत्त मे सन्देशमभिनवमत्युदात्तम् !
अद्य मे लक्ष्यं न प्राप्तं ! किन्तु प्राप्तम् !!

अथर्व० ३ । ७ । ७— (भृग्वंगिराः । यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप्)

४१० अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत ।
अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥ ७ ॥

अथर्व० ४ । ४ । १— (अथर्वा । सूर्यः । अनुष्टुप्)

४११ उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः ।
उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना ॥ २ ॥

अथर्व० ५ । १७ । ८— (ब्रह्मा । अग्निः । संस्तारपंक्तिः)

४१२ उरुव्यचसाऽग्नेर्धाम्ना पत्यमाने ।
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥ ८ ॥

अथर्व० ६ । ३ । ३— (अथर्वा । अश्विनौ, उषासानक्ता, अपां नपात्, त्वष्टा । जगती)

४१३ पातां नो देवाश्विना शुभस्पती उषासानक्तोत न उरुष्यताम् ।
अपां नपादभिह्रुती गयस्य चिद् देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये ॥ ३ ॥

अथर्व० ७ । २३ । १— (ब्रह्मा । ब्रध्नः । त्रिपदा अनुष्टुप्)

४१४ ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन् ।
अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः ॥ २ ॥

अथर्व० ७ । ७२ । १— (शन्तातिः । सुखम् । पथ्यापंक्तिः)

४१५ शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः ।
अहानि शं भवन्तु नः रात्री प्रति धीयतां शमुषा नो व्युऽच्छतु ॥ १ ॥

---

४१० (नक्षत्राणा अपवासे) नक्षत्रोंके चले जाने और (उषसां अपवासे) उषाओंके चले जानेपर (सर्वं दुर्भूतं अस्मत् अप उच्छतु) सब दुष्ट दुरवस्था हमसे दूर हो और (क्षेत्रियं अप उच्छतु) क्षेत्रिय रोग हमसे दूर हो । (७)

दुर्भूतं— जो भी बुरा होना है वह हमसे दूर हो । हमारे पास कोई बुरी स्थिति न आवे ।

४११ उषा, सूर्य और यह मेरा वचन, (वृषा प्रजापतिः) तथा बलवान प्रजापति (शुष्मेण वाजिना) बल और सामर्थ्यके साथ (उत् एजतु) ऊपर होनेकी प्रेरणा करे । (२)

४१२ (अग्नेः उरुव्यचसा) अग्निके विशाल तेजसे चमकनेवाले (धाम्ना पत्यमाने) स्थानसे चलनेवाली (सुष्वयन्ती यजते) सुन्दर दीखनेवाली पूजनीय (उपाके उषासा नक्ता) समीपस्थित उषा और रात्री (नः अध्वरं यज्ञं अवतां) हमारे हिंसारहित यज्ञकी सुरक्षा करें । (८)

४१३ (शुभस्पती अश्विना देवा) कल्याण करनेवाले अश्विदेव (नः पातां) हमारा संरक्षण करें । (उत उषासानक्ता) और उषा और रात्री (नः उरुष्यता) हमारा रक्षण करें । (अपां न पात्) जलोंको न गिरानेवाला देव (गयस्य अभिह्रुती) हमारे घरकी हानीसे हमें बचावे । हे (त्वष्टः देव) त्वष्टा देव ! (सर्वतातये वर्धय) हमारी सर्व प्रकारकी पूर्णताके लिये हमे बढाओ । (३)

४१४ (ब्रध्नः समीचीः) सूर्यने सीधी चलनेवाली (अरेपसः सचेतसः) निर्दोष और समान विचारवाली (मन्युमत्तमा) उत्तम रीतिसे चमकनेवाली (उषसः) उषाओंको (गोः चिते स्वसरे) पृथ्वीके दूरके भागमें (समैरयन्) प्रेरित किया । (२)

४१५ (वातः नः शं वातु) वायु हमारे लिये सुखदायी होकर बहे । (सूर्यः नः शंतपतु) सूर्य हमारे लिये सुखदायी होकर तपे । (अहानि नः शं भवन्तु) दिन हमारे लिये सुखदायी हों । (रात्री नः शं प्रतिधीयता) रात्री हमारे लिये सुखकारक हो, (उषा नः शं व्युच्छन्तु) उषा हमारे लिये कल्याणकारक होकर प्रकाशती रहे । (१)

(अथर्व० ७ । ७७ । ६— (अथर्वा । घर्मः, अश्विनौ । जगती)

४१६ उप द्रव पयसा गोधुगोषमा घर्मे सिञ्च पय उस्रियायाः ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनुप्रयाणमुषसो वि राजति ॥ ६ ॥

अथर्व० ७ । ८७ । ४— (शौनकः । अग्निः । त्रिष्टुप्)

४१७ अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीनन्‌ द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ ४ ॥

अथर्व० १८ । १ । २६

अथर्व० ७ । ८७ । ५— (शौनकः । अग्निः । त्रिष्टुप्)

४१८ प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥ ५ ॥

अथर्व० १८ । १ । २७

अथर्व ८।९।१२ (अथर्वा । कश्यपः, सर्वे ऋषयः, छंदांसि च; विराट् जगती)

४१९ छन्दः पक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेते ।
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥ १२ ॥

अथर्व० ९ । १० । १— (ब्रह्मा । अतिथिः, विद्या । साम्नी उष्णिक्)

४२० तस्मा उषा हिंकृणोति सविता प्र स्तौति ॥ १ ॥

---

४१६ हे (गोधुक्) गौका दोहन करनेवाले ! (पयसा ओषं उप आ द्रव) दूधके साथ जलदी आ। (उस्रियायाः पयः घर्मे सिञ्च) गौका दूध गर्म करनेके लिये पात्रमें डाल। (वरेण्यः सविता) श्रेष्ठ सविताने (नाकं वि अख्यत्) आकाशको प्रकाशित किया है, (उषसः अनु प्रयाणं विराजति) उषाके चले जानेके पीछे वह प्रकाशता है। (६)

४१७ (अग्निः उषसां अग्रं अनु अख्यत्) अग्नि उषाओंके अग्र भागके समय प्रज्वलित हुआ है। (प्रथमः जातवेदाः अहानि अनु) पहिला जातवेद अग्नि दिनोंके अग्रभागमें चमका है। (सूर्यः उषसः अनु) वह सूर्य उषाओंके पश्चात् (रश्मीन् अनु) किरणोंके साथ (द्यावा पृथिवी आ विवेश) द्यावा पृथिवीके अन्दर प्रविष्ट हुआ है। (४)

४१८ अग्नि उषाओंके अग्रभागमें प्रकाशित हुआ। पहिला जातवेद अग्नि दिनोंके प्रारंभमें चमकने लगा। (पुरुधा सूर्यस्य रश्मीन् प्रति) अनेक प्रकारसे सूर्यके किरणोंके साथ चमका है और (द्यावापृथिवी प्रति आ ततन्थ) द्यावा पृथिवीके अन्दर प्रकाशसे फैला है। (५)

४१९ (छन्दः पक्षे उषसा) छन्द जिनके पंख हैं ऐसी दो उषाएं (पेपिशाने) अपने आपको बहुत सजाती हुई (समानं योनिं) एकही घरकी ओर (अनु सं चरेते) घूमती हैं। (सूर्यपत्नी सं चरतः) सूर्यकी दोनों पत्नियां मिलकर घूम रही हैं। वे (प्रजानती केतुमती) ज्ञानवाली ध्वजवाली, (अजरे भूरिरेतसा) जीर्ण न होनेवाली और बहुत शक्तिवाली हैं। (१२)

छन्द अर्थात् वेद जिसके साथ पढे जाते हैं वे उषाएं दो हैं। एक प्रारंभकी और दूसरी अधिक प्रकाशवाली ये दोनों अग्निस्थानके चारों ओर प्रकाशती है। ये ही सूर्यकी पत्नियां हैं। ये ज्ञान देती है, प्रकाश रूप ध्वजवाली, कभी जरायुक्त न होनेवाली और बहुत वृष्टिके रेतरूप जल तथा वीर्यवाली है।

४२० उसके लिये उषा हिंकार करती है। सविता प्रस्ताव प्रस्तुत करता है। (१)

अथर्व० १०।१।३२— (प्रत्यंगिरसः। कृत्यादूषणम्। त्र्यनुष्टुब्गर्भा पंचपदातिजगती)

४२१ यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥ ३२ ॥

अथर्व० १०।२।१६— (नारायणः। पार्ष्णिसूक्तम्, पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्। अनुष्टुप्)

४२२ केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद् रुचे ।
उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे ॥ १६ ॥

अथर्व० १०।७।३१— (अथर्वा। स्कम्भः आत्मा वा। मध्येज्योतिर्जगती)

४२३ नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः ।
अजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय
यस्मान्नान्यत् परमस्तिभूतम् ॥ ३१ ॥

अथर्व० १०।८।३०— (कुत्सः। आत्मा। भुरिक्)

४२४ एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव ।
मही देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ॥ ३० ॥

अथर्व० ११।८।७— (शन्तातिः। चन्द्रमाः, मन्त्रोक्ताः। अनुष्टुप्)

४२५ मुञ्चन्तु मा शपथ्याऽदहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥ ७ ॥

---

४२१ (यथा सूर्यः तमसः परि मुच्यते) जैसा सूर्य अन्धकारसे मुक्त होता है, (रात्रिं उषसः च केतून् जहाति) रात्री और उषाके झंडोंको त्यागता है। (हस्ती दुरितं रजः जहाति इव) जैसा हाथी दुःखदायी धूलीको फेंकता है (एव अहं) उस तरह मैं (सर्वं दुर्भूतं) सब दुःखदायी (कृत्याकृता कृतं) घातपात करनेवालेने किया सब दूर करता हूं। (३२)

४२२ (केन आपः अन्वतनुत) किसने जलोंको फैलाया है, (केन अहः रुचे अहः अकरोत्) किसने दिनको प्रकाशनेके लिये बनाया है (केन उषसं अन्वैन्द्ध) किसने उषाको प्रकाशित किया (केन सायं भवं ददे) किसने सायंकालको बना दिया। (१६)

४२३ (सूर्यात् पुरा उषसः पुरा) सूर्योदयके पूर्व और उषःकालके पूर्व (नाम नाम्ना जोहवीति) जो ईश्वरका नाम उसके यशके साथ लेता है, जो भजन करता है, और (यत् अजः प्रथमं संबभूव) जो समाज हलचल करके पहिले संघटित होता है (स ह तत् स्वराज्यं इयाय) वह निःसंदेह उस स्वराज्यको प्राप्त होता है कि (यस्मात् अन्यत् परं नास्ति) जिससे दूसरा कोई राज्यशासन श्रेष्ठ नहीं है। (३१)

१ सूर्योदय और उषःकालके पूर्व ईश्वरका भजन कर।

२ हलचल करके समाजको प्रथम संघटित कर।

३ स्वराज्यशासन सबसे श्रेष्ठ शासन है, उसको अपने देशमें प्रस्थापित करो।

४२४ (एषा सनत्नी) यह सनातन रहनेवाली है (सनं एव जाता) सदा बनी रहती है, (एषा पुराणी) यह पुरातन है (सर्वं परि बभूव) इसने सबको घेर रखा है। (उषसः मही देवी) उषाकी यह बडी देवता (विभाती) चमकती हुई (सा एकेन एकेन मिषता) वह एक एकके आंख मूंदनेके साथ सबको (वि चष्टे) देखती है। (३०)

यह उषाकी प्रभाका वर्णन है। यह प्रभा उषाके साथ रहती है और सर्वत्र प्रकाश फैलाती है।

४२५ अहोरात्र और उषा (मा शपथ्यात् मुञ्चन्तु) मुझे शापसे छुडावें। (यं चन्द्रमा इति आहुः) जिसको चन्द्रमा कहते हैं वह सोमदेव (मा मुञ्चतु) मुझे छुडावे। (७)

अथर्व० १४ । १ । ३१— (सूर्या सावित्री । आत्मा । जगती)

४२६ आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्राः उषसः प्रति जागरासि ॥ ३१ ॥

अथर्व० १४ । २ । ४३— (सूर्या सावित्री । आत्मा । त्रिष्टुब्गर्भा पंक्तिः)

४२७ स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥ ४३ ॥

अथर्व० १४ । २ । ४४— (सूर्या सावित्री । आत्मा । प्रस्तारपंक्तिः)

४२८ नवं वसानः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो विभातीः ।
आण्डात् पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि ॥ ४४ ॥

अथर्व० १५ । २ । १३— (अथर्वा । अध्यात्मं, व्रात्यः । द्विपदाऽऽर्ची गायत्री)

४२९ उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं ।
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ १३ ॥

अथर्व० १६ । ४ । ६— (ब्रह्मा । आदित्यः । आर्ची उष्णिक्)

४३० स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ॥ ६ ॥

---

४२६ (तल्पं सुमनस्यमाना आरोह) शय्यापर प्रसन्न चित्तसे चढ, (इह अस्मै पत्ये प्रजां जनय) यहां इस पतिके लिये प्रजा उत्पन्न कर । (इन्द्राणी इव सुबुधा बुध्यमाना) इन्द्रकी पत्नीकी तरह अच्छी तरह जागती हुई (ज्योतिः अग्रा उषसः प्रति जागरासि) ज्योतिको अग्रभागमें रखनेवाली उषाकी तरह जागती रह । (३१)

स्त्री उषःकालमें उठे और अपने कार्य करे ।

४२७ (स्योनात् योनेः अधि बुध्यमानौ) सुखमयी शय्यासे जागकर उठनेवाले (हसामुदौ महसा मोदमानौ) हंसी और आनन्दसे भरे और प्रसन्नतासे प्रसन्न हुए (सु गू, सुपुत्रौ) उत्तम गौओंवाले, उत्तम पुत्रवाले (सु-गृही) उत्तम घरमें रहनेवाले (जीवौ) आरोग्यसंपन्न स्त्री पुरुष (विभातीः उषसः तराथः) चमकनेवाली उषाओंमें आनंदित रहकर दीर्घजीवी बनें । (४३)

पतिपत्नी आनंदसे एक शय्यापर सोयें, उषःकालमें जागें, सदा आनंद प्रसन्न रहें, गौवें और बालबच्चोंका उत्तम पालन करें और दीर्घजीवी हों ।

४२८ (नवं वसानः) नये वस्त्रको पहनते हुए (सुरभिः सुवासाः) उत्तम सुगंध युक्त और उत्तम वस्त्रोंका धारण करनेवाला मैं (जीवः) उत्तम जीवनके ओजसे संपन्न होकर (विभातीः उषसः उदागां) चमकनेवाली उषाओंके समय उदयको प्राप्त हुआ हूं । (आण्डात् पतत्रीः इव) अण्डेसे पक्षी मुक्त होता है उस तरह (विश्वस्मात् एनसः परि अमुक्षि) सब पापसे मुक्त हुआ हूं । (४४)

नये वस्त्र धारण करो, सुगंध शरीरको लगाओ, उषःकालमें उत्साहसे उठकर कार्यारंभ करो और सब पापाचारसे मुक्त व्यवहार करो ।

४२९ उषा (पुंश्चली) पुरुषके पास जानेवाली स्त्री है, (मन्त्रः मागधः) मन्त्र स्तुति पाठक-देवताकी स्तुति करता है, (विज्ञानं वासः) विज्ञान ही मनुष्यके लिये उत्तम वस्त्र है, (अहः उष्णीषं) दिन शिरोवस्त्र है, (रात्री केशाः) रात्री बाल है, (हरितौ प्रवर्तौ) दो घोडे दो कुंडल हैं, (कल्मलिः मणिः) प्रकाश मणिभूषण है । (१३)

व्रताचरण करनेवाले पुरुषका यह वर्णन है, यहां व्रती सूर्य है, उसके पास उषा जाती है उसकी सेवा करनेके लिये । अन्य वर्णन व्रतीका है । वह मंत्रवान है, विज्ञानवान है, काले बालवाला है । इ०

४३० हे जलो ! (अद्य स्वस्ति) आज मेरा कल्याण हो, मैं (उषसः दोषसः च) सबेरे और सायंकालको (सर्वगणः सर्वः) सब समूहके साथ संपूर्ण उन्नत होकर उत्तम सुखको (अशीय) प्राप्त होऊं । (६)

अथर्व० १६ । ६ । २— (यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । उषा । प्राजापत्याऽनुष्टुप्)

४३१ उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥ २ ॥

अथर्व० १६ । ६ । ५— (यमः । दुःष्वप्ननाशनं, उषा । साम्नी पंक्तिः)

४३२ उषा देवी वाचा संविदाना, वाग् देव्यु१षसा संविदाना ॥ ५ ॥

अथर्व० १६ । ६ । ६— (यमः । दुष्वप्ननाशनं, उषा । निचृदार्षी बृहती)

४३३ उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ॥ ६ ॥

अथर्व० १७ । १ । ३०— (ब्रह्मा । आदित्यः । जगती)

४३४ अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥ ३० ॥

अथर्व० १८ । १ । २०— (अथर्वा । यमः, मन्त्रोक्ताः । जगती)

४३५ सो चिन्नु भद्रा क्षुमती उशस्वत्युषा उवास मनवे स्वऽर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥ २० ॥

अथर्व० १८ । ३ । २४— (अथर्वा । यमः । त्रिष्टुप्)

४३६ अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ २४ ॥

अथर्व० १८ । ४ । ५८— (अथर्वा । जगती)

४३७ वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषया ॥ ५८ ॥

---

४३१ हे उषा ! (यस्मात् दुष्वप्न्यात् अभैष्म) जिस दुष्टस्वप्नसे हम डरते हैं (तत् अप उच्छतु) वह भय हमसे दूर हो। (२)

४३२ उषा देवी वाणीके साथ मिली और वाणी देवी उषाके साथ मिली है। दोनों एक रूप हुए हैं। (५)

४३३ उषाका पति वाणीके पतिके साथ मिला और वाणीका पति उषाके पतिके साथ मिला है। दोनों साथ साथ रहे हैं। (६)

४३४ (गोप्ता अग्निः) रक्षक अग्नि (मा विश्वतः परिपातु) मेरी चारों ओर संरक्षण करे। (उद्यन् सूर्यः मृत्युपाशान् नुदतां) उदयको आता हुआ सूर्य मृत्युके पाशोंको दूर करें। (व्युच्छन्तीः उषसः) चमकनेवाली उषाएं, (ध्रुवाः पर्वताः) सुस्थिर रहनेवाले पर्वत (सहस्रं प्राणाः) हजारों प्राण (मयि आयतन्तां) मुझमें आकर रहें। अर्थात् इनके गुण मुझे प्राप्त हों ३०

मेरी सुरक्षा हो, मुझसे मृत्यु दूर चला जावे, उषाका तेज पर्वतोंका स्थैर्य, प्राणकी शक्ति मुझमें घर करके रहे।

४३५ (सा उ चित् नु भद्रा) वह कल्याण करनेवाली, (क्षुमती यशस्वती) अन्नसे परिपूर्ण, यशस्विनी, (स्वर्वती उषा) प्रकाशमय उषा (मनवे उवास) मनुष्यके अभ्युदयके लिये प्रकाश रही है। (यत ईं उशतां उशन्तं) इसी समय इच्छा करनेवालोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले (क्रतुं होतारं अग्निं) यज्ञ करनेवाले विबुधोंको बुलानेवाले अग्निको (विदथाय जीजनन्) यज्ञके लिये याजकोंने उत्पन्न किया है। (२०)

४३६ (ते अकर्म) तेरे लिये हमने कर्म किये हैं। (स्वपसः अभूम) उत्तम कर्म करनेवाले हम हो गये हैं। (विभातीः उषसः ऋतं अवस्रन्) चमकनेवाली उषाएं यज्ञके स्थानपर प्रकाश रही हैं। (यत् देवाः अवन्ति तत् विश्वं भद्रं) जिसका देव संरक्षण करते हैं वह सब कल्याणकारी ही है। (सुवीराः विदथे बृहत् वदेम) उत्तम वीरोंवाले होकर हम संमेलनमें विशेष उन्नति करनेके भाषण करेंगे। (२४)

४३७ (मतीनां वृषा) शुभ बुद्धि देनेवाला, (विचक्षणः) ज्ञानी (अह्नां सूरः) दिनोंमें प्रकाशनेवाला सूर्य, (उषसां दिवः प्रतरीता) उषाओं और द्युका तारक, (सिन्धूनां प्राणः) नदियोंका प्राण जैसा सोमरस (कलशान् अचिक्रदत्) कलशोंमें शब्द करता हुआ प्रवेश करता है। यह सोमरस (इन्द्रस्य हार्दिं मनीषया आविशत्) इन्द्रके हृदयमें बुद्धि पूर्वक प्रविष्ट हुआ है। (५८)

अथर्व० १९।४८।२-- (गोपथः। रात्रिः। त्रिपदा विराडनुष्टुप्)

४३८ रात्रि मातरुषसे नः परि देहि।
उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि ॥ २ ॥

अथर्व० १९।४९।६—(गोपथः, भरद्वाजश्च। रात्रिः। आस्तारपंक्तिः)

४३९ स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे।
आसाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ॥ ६ ॥

अथर्व० १९।५०।७—(गोपथः। रात्रिः। अनुष्टुप्)

४४० उषसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः।
उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ॥ ७ ॥

अथर्व० २०।१६।९—(अयास्यः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्)

४४१ सोषामविन्दत् स स्व१:सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥ ९ ॥ ऋ० १०।६८।९

अथर्व० २०।२६।६—(मधुच्छन्दाः। इन्द्रः। गायत्री)

४४२ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥ ६ ॥

अथर्व० २०।४७।१२; २०।६९।११ ऋ० १।६।३;

---

४३८ हे रात्रि माता! (नः उषसे परिदेहि) हमें तू उषाके पास पहुंचाओ। उषा (नः अह्ने परिददातु) हमें दिनके सुपुर्द करे। हे (विभावरि) हे रात्री! (अहः तुभ्यं) दिन हमें तेरे सुपुर्द करे। (२)

इस तरह मैं मृत्युसे दूर हो जाऊं।

४३९ हे (विभावरि रात्रि) प्रकाशवाली रात्री! तू (नः स्तोमस्य राजा इव जोषसे) हमारे स्तोत्रका तू राजाके समान प्रेमसे सेवन करती है। (व्युच्छन्तीः उषसः) प्रकाशनेवाली उषाओंमें हम (सर्ववीराः आसाम) सब वीरोंसे युक्त होकर रहें (सर्ववेदसः भवाम) सब प्रकारके धनोंसे युक्त होकर रहें। (६)

४४० हे रात्री! (नः अनागसः सर्वान् उषसे परिदेहि) हम निष्पाप बने सबको उषाके पास पहुंचा दो। (उषा नः अह्ने आ भजात्) उषा हमें दिनके पास दे देवे। हे (विभावरि) रात्री! (अहः तुभ्यं) दिन तुम्हारे पास पहुंचावे। (७)

इस तरह हम दीर्घायु होजांय। इसी अर्थवाला मंत्र इससे पूर्व अ० १९।४८।२ क्रमांक ४३८ में है। इसी ऋषिके ये दोनों मंत्र हैं।

४४१ (सः उषां अविन्दत्) उसने उषाको प्राप्त किया, (सः स्वः, सः अग्निं) उसने दिव्य ज्योतिको और उसने अग्नि-को पाया। (सः अर्केण तमांसि वि बबाधे) उसने किरणोंसे अन्धकारको मार भगाया। (बृहस्पतिः गो वपुषः वलस्य) बृहस्पतिने गौके जैसे शरीरवाले वल राक्षसको मारकर (पर्वणः मज्जानं न निर्जभार) जोडेसे उखाडनेके समान उसके शरीरसे चर्बीको निकाल दिया। अर्थात् पूर्ण रीतिसे मारकर, उसके जोड तोड दिये जिनसे चर्बी गिरने लगी। (९)

बृहस्पति ज्ञानका स्वामी है और वह भी इतना युद्ध करनेमें प्रवीण था। ज्ञानीको भी स्वसंरक्षण करना चाहिये।

४४२ हे (मर्याः) मनुष्यो! (अकेतवे केतुं कृण्वन्) अज्ञानी को ज्ञान देनेके लिये और (अपेशसे पेशः) रूपहीनको सौंदर्य देनेके लिये (उषद्भिः सं अजायथाः) उषाओंके साथ तूं प्रकट होता है। (६)

मनुष्य अज्ञानीको ज्ञान देवे, जो रूपहीन हो उसको अच्छी तरह सजाकर सुन्दर बनावे और स्वयं अच्छी तरह प्रकाशित होवे।

अथर्व० २०।३४।७- (गृत्समदः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्)

४४३ यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ ७ ॥ ऋ० २।१२।७

अथर्व० २०।७२।३— (परुच्छेपः । इन्द्रः । अत्यष्टिः)

४४४ उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः
स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ३ ॥ ऋ० १।१३१।६

अथर्व० २०।७६।२-- (वसुक्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्)

४४५ प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥२॥ ऋ० १०।२९।२

४४३ (यस्य अश्वासः प्रदिशि) जिसके घोडे दिशा उपदिशाओंमें संचार करते हैं, (यस्य गावः) जिसकी गौवें, (यस्य ग्रामाः) जिसके ग्राम या सेनाके संघ तथा (यस्य विश्वे रथासः) जिसके सब रथ चारों ओर घूम रहे हैं। (यः सूर्यं उषसं जजान) जिसने सूर्यको और उषाको निर्माण किया है (यः अपां नेता) जो जलोंको चलानेवाला है, हे (जनासः) लोगो ! (सः इन्द्रः) वह इन्द्र है । (७)

४४४ (अस्याः उषसः) इस उषाके समय वह प्रभु (नः जुषेत) हमारी प्यार करे। हमारी (अर्कस्य बोधि) स्तुति को वह जाने । (हवीमभिः हविषः) हमारी प्रार्थनाओंके साथ हविष्यान्नका (हवीमभिः स्वर्षाता) और हमारे बुलावोंके साथ स्वर्गको जीतनेवाला हो । हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र ! (यत् वृषा मृधः हन्तवे चिकेतसि) जब हिंसक शत्रुओंको अपने बलसे मारनेकी इच्छा करता है तब (अस्य नवीयसः वेधसः मन्म श्रुधि) इस नये ऋषिके यह स्तोत्र सुन (नवीयसः) नये ऋषिका स्तोत्र सुन । (३)

४४५ (अस्याः अपरस्याः उषसः नृतौ) इस और अगली उषाके नाचके समय, (नृणां नृतमस्य ते प्रस्याम) वीरोंके अन्दर अत्यन्त श्रेष्ठ वीर ऐसे तेरे साथ हम रहेंगे । (त्रिशोकः) तीन ज्योतिवाला (यः रथः कुत्सेन शतं नॄन् अनु आवहन्) जो रथ कुत्सके साथ सौ वीरोंको उठाकर लानेवाला (ससवान्) और विजय करनेवाला (असत्) होता है । (२)

॥ उषाके मन्त्र समाप्त ॥

विभिन्न देवताओंके मंत्रोंमें उषाका वर्णन

१ उषाः	२०२	१२ मित्रावरुणौ	३	२३ इन्द्राविष्णू	१
२ अग्निः	५३	१३ मरुतः	३	२४ मनः	१
३ इन्द्रः	४८	१४ सूर्यः	३	२५ बृहस्पतिः	१
४ अश्विनौ	२८	१५ आदित्योषसः	२	२६ चन्द्रमाः	१
५ विश्वेदेवाः	२२	१६ पुरूरवाः	२	२७ यक्ष्मनाशनं	१
६ उषासानक्ता,	१५	१७ रात्री	२	२८ ब्रध्नः	१
७ अग्नीवरुणौ	१३	१८ सविता	१	२९ अतिथिः	१
८ सोमः पवमानः	१०	१९ गावः	१	३० कृत्यादूषणं	१
९ दधिक्राः	७	२० इन्द्राग्नी	१	३१ पुरुषः	१
१० वायुः	४	२१ इन्द्रासोमौ	१	३२ आत्मा	७
११ वरुणः	४	२२ भगः	१	३३ यमः	१

उषा देवताके मन्त्रोंके ऋषि

ऋषिः	मंत्रसंख्या
१ वसिष्ठः	७१
२ वामदेवः	४३
३ कक्षीवान्	२८
४ प्रस्कण्वः	२७
५ कुत्सः	२३
६ भरद्वाजः	२०
७ गोतमः	१७
८ विश्वामित्रः	१७
९ सत्यश्रवाः	१६
	२६२
१० अथर्वा	९
११ गृत्समदः	९
१२ पुरुच्छेपः	५
१३ ब्रह्मा	५
१४ लुशः	५
१५ कुशिकः	४
१६ चितः	४
१७ पराशरः	४
१८ अगस्त्यः	३
१९ गोपथः	३
२० दीर्घतमाः	३
२१ मूर्धन्वान्	३
२२ यमः	३
२३ शुनःशेपः	३
२४ श्यावाश्वः	३
२५ सूर्या	३
२६ हिरण्यस्तूपः	३
	७२
२७ अंगः	२
२८ अत्रिः	२
२९ अयास्यः	२
३० अरुणः	२
ऋषि	मंत्रसंख्या
३१ असितः (देवलो वा)	२
३२ ऋजिश्वा	२
३३ कवषः	२
३४ कूर्मः	२
३५ गाथी	२
३६ जमदग्निः	२
३७ नोधा	२
३८ पुरूरवाः	२
३९ प्रजापतिः	२
४० बुधगविष्ठिरौ	२
४१ वसुकः	२
४२ शन्तातिः	२
४३ शशकर्णः	२
४४ शौनकः	२
४५ संवर्तः	(४) २
४६ सव्यः	२
४७ सोभरिः	२
४८ स्यूमरश्मिः	२
	४४
४९ अगस्त्यः	१
५० अवस्युः	१
५१ अष्टादंष्ट्रः	१
५२ ऋषभः	१
५३ कृतः	१
५४ कविः	१
५५ काल्यः	१
५६ गयः	१
५७ गर्गः	१
५८ गोपवनः	१
५९ गौरीवीतिः	१
६० घोषा	१
६१ चित्रमहाः	१
६२ तिरश्चिः	१
ऋषिः	मंत्रसंख्या
६३ नारायणः	१
६४ नाभाकः	१
६५ पवित्रः	१
६६ पृश्नयः	१
६७ प्रत्यंगिराः	१
६८ बन्ध्वादयः	१
६९ बृहदुक्थः	१
७० ब्रह्मातिथिः	१
७१ भृग्वंगिराः	१
७२ मधुच्छन्दाः	१
७३ मनुः	१
७४ मान्धाता	१
७५ मेधातिथिः	१
७६ मेध्यातिथिः	१
७७ रेणुः	१
७८ लोपामुद्रा	१
७९ वत्सप्रिः	१
८० वसुकर्णः	१
८१ वसुश्रुतः	१
८२ विरूपः	१
८३ विश्ववारा	१
८४ शर्यातिः	१
८५ श्रुतवित्	१
८६ सदापृणः	१
८७ सिकता	१
८८ सुमित्रः	१
८९ सुहस्त्यः	१
९० स्वस्तिः	१
९१ हविर्धानः	१
	४३
९२ यजुर्मन्त्रा (प्राजापत्याः)	२२
	(४४५) ४४३